नई दिल्ली
रविवार, 15 फरवरी, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-18 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

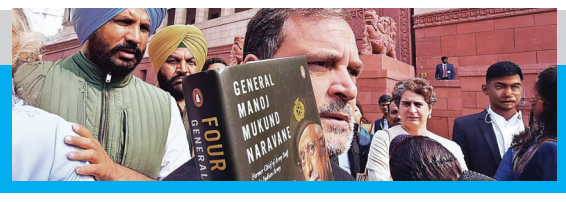

Freedom is in Peril. Defend it with all your might. Jawaharlal Nehru

नरवणे की 'अनछपी' किताब पर अब तक नहीं लगा है कोई प्रतिबंध, फिर भी वह अधर में ही 5

महाराष्ट्र में किसानों की पीड़ा कोई नहीं देख रहा 4

बिना चरवाहे अरावली? 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

भारत-अमेरिका व्यापार समझौता

एकतरफा, अपमानजनक और मनमानी भरा

हरजिंदर

समझौतों के ढांचे (फ्रेमवर्क) के बारे में तो सुना था। 'अंतरिम समझौतों' के बारे में भी सुना था। लेकिन 'अंतरिम समझौते का ढांचा' आखिर होता क्या है? अर्थशास्त्री रथिन रॉय ने यह तीखा सवाल उठाकर भारत-अमेरिका संयुक्त वक्तव्य पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की तारीफ पाने वाले और भारतीय सरकार द्वारा स्वागत किए गए 'सभी समझौतों की जननी' की विसंगतियों को उजागर कर दिया। घोषणा, समय और भाषा पूर्व वित्त सचिव सुभाष चंद्र गर्ग की इस बात को सही ठहराती है कि भारत ने आत्मसमर्पण कर दिया था।

साझा बयान जारी होने से चार दिन पहले, अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने ट्रुथ सोशल पर लिखा कि भारतीय प्रधानमंत्री लंबे समय से अटके व्यापार समझौते को लेकर सहमत हो गए हैं कि भारत ने रूसी तेल खरीदना बंद कर देगा। भारत अमेरिकी उत्पादों को 'बड़ी मात्रा में खरीदेगा और अमेरिका एवं वेनेजुएला से अधिक आयात करेगा। बदले में अमेरिका रेसिप्रोकल टैरिफ को 25 प्रतिशत से घटाकर 18 प्रतिशत करेगा। इसके बाद प्रधानमंत्री मोदी ने टैरिफ में कमी का स्वागत करते हुए ट्वीट किया, अमेरिकी राष्ट्रपति के साथ अपनी दोस्ती का जिक्र किया। कहा कि यह साझेदारी दोनों देशों के लिए 'असीम संभावनाओं' को खोलेगी।

उत्साह चार दिन तक चला। 6 फरवरी को, एक पेज का साझा बयान (यानी 'अंतरिम समझौते का ढांचा') वॉशिंगटन ने तब जारी किया जब भारत अभी सो रहा था। प्रेस सूचना ब्यूरो (पीआईबी) ने बयान को भारतीय समयानुसार सुबह 4.20 बजे जारी किया। बहुत से विवरण न होने के बावजूद, उसमें इतना था कि व्यापार विशेषज्ञ चौंक उठे। अंतिम व्यापार समझौता एक कानूनी दस्तावेज होगा जो हजारों पृष्ठों का हो सकता है। इस एक पेज के दस्तावेज में साफ था कि भारत रूसी तेल की खरीद बंद करने पर राजी हो गया है। उसने अपने तेल आयात की अमेरिकी निगरानी स्वीकार की है और हैरतनाक ढंग से अधिकांश अमेरिकी उत्पादों पर आयात शुल्क शून्य करने पर भी सहमत हुआ है। 'यह विनाशकारी समझौता आने वाले दशकों तक भारत को चोट पहुंचाएगा और सताएगा,' गर्ग ने डेक्कन हेराल्ड में लिखा।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार वार्ताकार और ग्लोबल ट्रेड रिसर्च इनिशिएटिव, नई दिल्ली के संस्थापक अजय श्रीवास्तव सवाल उठाते हैं कि भारत अमेरिका से आखिर आयात क्या करेगा? वह उन औद्योगिक और उपभोक्ता सामान का बहुत कम उत्पादन करता है जिनकी भारत को जरूरत है। संयुक्त वक्तव्य की भाषा, वह कहते हैं, चिंताजनक है। जहां भारत ने गैर-टैरिफ बाधाओं को कम करने का वचन दिया है, वहीं अमेरिका ने भारतीय वस्तुओं के प्रवेश को सुगम बनाने के लिए अपने कानूनों और नियमों में ढील देने की कोई प्रतिबद्धता नहीं दिखाई।

साझा बयान में असमानता इतनी साफ थी कि लेखक और टिप्पणीकार ब्रह्मा चेल्लानी ने कहा कि "भारत की प्रतिबद्धताएं तात्कालिक, मात्रात्मक और औपचारिक निगरानी के अधीन हैं, जबकि अमेरिकी 'रियायतें' सशर्त, पलटने लायक या सिर्फ सुधारात्मक हैं। अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि और व्हाइट हाउस भारत को एक 'बाजार' के रूप में देखते हैं जिसे खोला जाना है, न कि एक रणनीतिक साझेदार के रूप में।"

फोटो: गेटी इमेजेज

एकतरफा अमेरिका द्वारा भारत से आयात पर 18 प्रतिशत टैरिफ लगाने और भारत द्वारा अमेरिकी आयात पर शून्य टैरिफ लगाने में कुछ भी 'पारस्परिक' नहीं

आम लोगों ने भी इस बयान को दबाव के नतीजे की तरह देखा। डाउन टू अर्थ में प्रकाशित सोरित के एक कार्टून में एक किसान पूछता है कि इस व्यापार समझौते को 'ऐतिहासिक' क्यों कहा जा रहा है। एक मजदूर जवाब देता है- 'क्योंकि इस समझौते के बाद भारतीय खेती इतिहास बन जाएगी।' एक व्यंग्यकार ने सोशल मीडिया पर लिखा- 'इस ऐतिहासिक समझौते के अनुसार, मैं एक खास मधुशाला से पीऊंगा और किसी और से नहीं। बदले में महंगे पेय बेचता रहेगा।'

एक आर्थिक टिप्पणीकार ने कहा, "अमेरिका ने भारत के साथ वही किया है जो भारत सरकार अपने नागरिकों के साथ करने की आदी है। हमारे अधिकार छीन लिए और सजा तय हो गई फिर उन्हें बड़ी कृपा के साथ थोड़ा कम कर दिया गया।"

श्रीवास्तव का तर्क है कि भारत सरकार शायद यह आशा कर रही है कि यूक्रेन का युद्ध जल्द खत्म होगा और रूस पर लगे प्रतिबंध हट जाएंगे। या अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट राष्ट्रपति ट्रंप के 'रेसीप्रोकल टैरिफ' को अवैध घोषित कर देगा। या फिर नवंबर में अमेरिकी कांग्रेस के मध्यावधि चुनावों के बाद राष्ट्रपति अपना रुतबा खो बैठेंगे। वरना भारत द्वारा ऐसी अपमानजनक शर्तों को स्वीकार करने की व्याख्या कठिन है। लोकसभा में विपक्ष के नेता राहुल गांधी ने केन्द्रीय बजट पर चर्चा के दौरान पूछा, "क्या आपको अपने किए पर शर्म नहीं आती?"

केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री पीयूष गोयल द्वारा यह कहने के कुछ ही घंटों बाद कि 18 प्रतिशत अमेरिकी टैरिफ से भारत को बांग्लादेश और वियतनाम जैसे देशों पर बढ़त मिलेगी, अमेरिका ने बांग्लादेश के साथ व्यापार समझौता कर उस कथित बढ़त को समाप्त कर दिया। बांग्लादेश कपास नहीं उगाता, पर वस्त्रों का बड़ा निर्यातक है। अब वह अमेरिका से कपास और कृत्रिम रेशे को आयात करेगा। उनसे जो वस्त्र बनेंगे, उन पर अमेरिका शून्य टैरिफ लगाएगा। एक झटके में भारत का एक कपास बाजार उसके हाथ से निकल गया। भारतीय वस्त्र उद्योग को अमेरिकी बाजार में अपनी हिस्सेदारी खोने का भी डर है।

भारत ने 'सभी अमेरिकी औद्योगिक वस्तुओं पर टैरिफ समाप्त या कम करने और डीडीजीएस, पशु आहार के लिए लाल ज्वार, मेवे और फल, सोयाबीन तेल, वाइन और स्पिरिट्स सहित अमेरिकी कृषि और खाद्य उत्पादों पर शुल्क घटाने' पर सहमति दी है। साथ ही सहमति वाले क्षेत्रों में प्राथमिकता देने, इसके अलावा वह डिजिटल व्यापार नियमों की दिशा में कार्य करने पर भी सहमत हो गया है।

> भारतीय किसानों के लिए यह समझौता इतिहास दोहराता दिख रहा है। लगभग छह साल पहले केन्द्र सरकार ने तीन कृषि कानूनों को लागू किया था, जिन्हें किसानों ने बाजार की शक्तियों के हवाले किए जाने के रूप में देखा। भारतीय किसानी फिर एक बार अस्तित्व के संकट का सामना कर रही है

साझा बयान में यह भी दर्ज है कि 'भारत पांच वर्षों में 500 अरब डॉलर मूल्य के अमेरिकी सामान, जिसमें ऊर्जा उत्पाद, विमान और उनके पुर्जे, कीमती धातुएं, प्रौद्योगिकी उत्पाद और कोकिंग कोयला शामिल हैं, वगैरह को खरीदने का इरादा रखता है।'

श्रीवास्तव को वक्तव्य के वे हिस्से और ज्यादा परेशान करते हैं जो अस्पष्ट और व्याख्या के लिए खुले हैं। उदाहरण के लिए, 'दोनों पक्ष आर्थिक सुरक्षा और सप्लाई चेन के लचीलेपन पर सामंजस्य बनाएंगे'। इसमें सामंजस्य का क्या अर्थ है? द वायर के लिए करण थापर को दिए साक्षात्कार में उन्होंने कहा कि वह अमेरिका-मलेशिया समझौते में उस प्रावधान से चिंतित हैं जिसमें तीसरे देशों के साथ व्यापार संबंधों की भी अमेरिकी समीक्षा का प्रावधान है। उन्होंने चेतावनी दी कि अंतिम समझौते में भारतीय वार्ताकारों को ऐसे कठोर प्रावधानों से बचना चाहिए।

भारतीय किसानों के लिए यह समझौता इतिहास को दोहराता दिख रहा है। लगभग छह साल पहले केन्द्र सरकार ने तीन कृषि कानूनों को लागू किया था, जिन्हें किसानों ने बाजार की शक्तियों के हवाले किए जाने के रूप में देखा गया। भारतीय किसानी फिर एक बार अस्तित्व के संकट का सामना कर रही है। अधिकांश छोटे और सीमांत किसानों को दुनिया के सबसे अधिक सब्सिडी प्राप्त पाने वाले उत्पादकों से स्पर्धा करने को कहा जा रहा है। भारत में औसत जोत आकार लगभग एक से डेढ़ हेक्टेयर है, जबकि अमेरिका में औसत खेत आकार 170 हेक्टेयर से अधिक है। अमेरिकी कृषि विशाल पैमाने, यंत्रीकरण, उन्नत भंडारण, बीमा कवरेज और सीधी आर्थिक मदद पर आधारित है।

अमेरिकी कृषि आंकड़ों के अनुसार, वहां के किसानों को भारी सरकारी समर्थन मिलता है। प्रत्यक्ष और परोक्ष सब्सिडी, फसल बीमा, आपदा भुगतान और संघीय कृषि कार्यक्रम मिलकर हर वर्ष अरबों डॉलर खर्च करते हैं। रिपोर्टों के अनुसार, प्रति किसान औसत समर्थन हर वर्ष हजारों डॉलर तक पहुंचता है।

यह समझौता सोयाबीन तेल, डीडीजीएस और पशु आहार के लिए लाल ज्वार जैसे उत्पादों पर टैरिफ में कमी या समाप्ति की अनुमति देता है। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, तेलंगाना और राजस्थान के सोयाबीन किसान पहले से संकट में हैं। बाजार भाव अक्सर न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) से 20-30 प्रतिशत नीचे रहते हैं। सस्ते आयात, खासकर ऐसे देश से जहां 90 प्रतिशत से अधिक सोयाबीन उत्पादन जेनेटिकली मॉडीफाइड है, घरेलू कीमतों को और दबा सकते हैं।

इसी तरह, पशु आहार के लिए लाल ज्वार और मक्का के आयात से भारतीय मक्का और सोयाबीन खली की मांग घट सकती है। डीडीजीएस आयात को कोटा प्रणाली के तहत 'सीमित' बताया जा रहा है, पर एक बार रास्ता खुलने के बाद दीर्घकालिक दिशा पलटना कठिन होता है।

हिमाचल प्रदेश और जम्मू-कश्मीर के सेब उत्पादक क्षेत्रों में चिंता सबसे अधिक दिखाई देती है। सरकार ने सेब पर 80 रुपये प्रति किलोग्राम का न्यूनतम आयात मूल्य (एमआईपी) और 25 प्रतिशत टैरिफ निर्धारित किया है। दूसरी तरफ बड़े खरीदार, जैसे अडानी समूह ने हिमाचल के किसानों से पिछले साल 85 रुपये प्रति किलो पर सेब खरीदा था। भंडारण, ग्रेडिंग, पैकेजिंग और परिवहन पर लगभग 35 रुपये प्रति किलो जोड़ने पर लागत 120 रुपये प्रति किलो से अधिक हो जाती है, जबकि अब आयातित सेब 100 रुपये किलो पर ही उपलब्ध होंगे।

प्रोग्रेसिव ग्रोअर्स एसोसिएशन के लोकिंदर सिंह बिष्ट कहते हैं, "हमारे हित गिरवी रख दिए गए हैं।" उन्होंने नेशनल हेराल्ड से कहा कि तत्काल प्रभाव प्रीमियम गुणवत्ता वाले भारतीय सेब पर पड़ेगा और धीरे-धीरे कीमतों का दबाव पूरे बाजार में फैल जाएगा। वह स्पष्ट कहते हैं, "हम अमेरिका, यूरोप या न्यूजीलैंड के किसानों से मुकाबला कर सकते हैं, लेकिन वहां की जलवायु से स्पर्धा नहीं कर सकते।"

भारतीय कृषि सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 16-18 प्रतिशत योगदान देती है, लेकिन लगभग 45 प्रतिशत आबादी को आजीविका प्रदान करती है। कृषि से संबंधित व्यापार निर्णय केवल अर्थव्यवस्था ही नहीं, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों को भी प्रभावित करते हैं। जलवायु अस्थिरता, बढ़ती लागत, स्थिर वास्तविक आय और कर्ज के बोझ से जूझ रही भारतीय कृषि के लिए, बिना व्यापक घरेलू सुधार, सिंचाई, भंडारण, खरीद, प्रसंस्करण और किसान आय समर्थन के ही बाजार को सब्सिडी प्राप्त आयात के लिए खोलना ग्रामीण संकट को गहरा सकता है।

भारतीय व्यापार वार्ताकार बड़े भारतीय बाजार के लिए महत्वपूर्ण रियायतें हासिल करने में विफल रहे। इसके विपरीत ऐसा लगता है कि उन्होंने अमेरिकी दबाव के चलते निगरानी स्वीकार की, स्वायत्तता का त्याग किया और भारतीय कृषि बाजार को खोल दिया। ■

मतदान के अधिकार की सरेआम, सुव्यवस्थित लूट

मुस्लिम मतदाताओं को मतदाता सूची से हटाने के लिए बड़ी संख्या में पहले से भरे हुए फॉर्म 7 जमा किए जा रहे। साफ है कि इसमें भाजपा ने अपने कार्यकर्ताओं को लगा रखा है

नंदलाल शर्मा

कांग्रेस महासचिव (संगठन) के. सी. वेणुगोपाल ने 29 जनवरी को चुनाव आयोग का ध्यान भाजपा द्वारा "फॉर्म 7 के बड़े पैमाने पर दुरुपयोग" की ओर दिलाया, जिसका मकसद विपक्ष का समर्थन करने वाले 'संदिग्ध' मतदाताओं को मतदाता सूची से हटाना था। अपने पत्र में वेणुगोपाल ने इसे व्यापक पैमाने पर और सुनियोजित दुरुपयोग बताया और कहा कि भाजपा ने, खासकर चुनाव वाले राज्यों में अपने कार्यकर्ताओं को बड़ी संख्या में इस काम पर लगा दिया है। उन्होंने कहा कि इस केन्द्रीकृत धोखाधड़ी का एक प्रमुख तत्व यह सुनिश्चित करना है कि वैध मतदाताओं को आपत्तियों के बारे में सूचित करने वाले नोटिस उन तक कभी पहुंचें ही नहीं।

उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, असम, केरल, पश्चिम बंगाल और छत्तीसगढ़ से प्राप्त रिपोर्टों में भी ऐसा ही देखने को मिला। फॉर्म 7 थोक में छपे दिखाई दिए हैं और कुछ उल्लेखनीय समानताएं भी, मसलनः 1. हटाए जाने वाले नाम पहले से छपे हुए हैं (जो मतदाता डेटाबेस तक पहुंच के साथ बड़े पैमाने पर की गई कार्रवाई का संकेत देते हैं) और 2. आपत्ति करने वाले आवेदकों के नाम गायब हैं, लेकिन फॉर्म के निचले भाग में हस्ताक्षर मौजूद हैं।

भारत निर्वाचन आयोग (ईसीआई) ने 2023 में जब फॉर्म 7 से संबंधित नियमों में चुपके से बदलाव किया, किसी का इस पर ध्यान नहीं गया। फॉर्म 7 के जरिये कोई मतदाता, मतदाता सूची में किसी अन्य व्यक्ति के नाम को चुनौती दे सकता है और नाम हटवाने का अनुरोध कर सकता है। पहले, फॉर्म 7 जमा करने का यह अधिकार सिर्फ पड़ोसी या एक ही मतदान केन्द्र पर पंजीकृत मतदाता को था, लेकिन नए नियम के अनुसार, अब एक ही विधानसभा क्षेत्र का कोई भी मतदाता ऐसा कर सकता है। एक और बड़ा बदलाव यह कि अब आवेदक असीमित संख्या में आवेदन जमा कर सकता है।

उत्तर प्रदेश के मुख्य निर्वाचन अधिकारी के आधिकारिक एक्स हैंडल (@ceoup) पर 11 फरवरी को पोस्ट किए गए एक अपडेट के अनुसार, उत्तर प्रदेश में फॉर्म 7 के 1.1 लाख आवेदन प्राप्त हुए हैं। स्वयं चुनाव आयोग ने उत्तर प्रदेश या अन्य राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों में जहां इस दौर में एसआईआर कराए जा रहे, वहां के बारे में ऐसा कोई आंकड़ा न तो एक्स पर जारी किया है और न ही अपनी वेबसाइट पर प्रकाशित किया है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, प्रस्तुत किए गए फॉर्म 7 को लेकर सभी राज्यों में एक चिंताजनक समानता हैः हटाए जाने वाले मतदाताओं के नाम, पते और ईपीआईसी नंबर फॉर्म पर पहले से मुद्रित हैं। इस संवाददाता ने जिन भी बूथ-स्तरीय अधिकारियों (बीएलओ) से संपर्क किया, सभी मामलों में आपत्ति करने वाले यानी आवेदक का नाम, जो फार्म में सबसे ऊपर दिखाई देता है, खाली मिला। अनिवार्यता न होने के बावजूद ईपीआईसी नंबर भी हाथ से लिखा न होकर फॉर्मों पर मुद्रित है, और जो ईसीआई के डेटाबेस तक पहुंच से संबंधित किसी प्रक्रिया का संकेत देता है।

*

अमेठी के जगदीशपुर में भवन निर्माण सामग्री के आपूर्तिकर्ता शराफत हुसैन बताते हैं कि उनके पूरे परिवार के 19 सदस्यों के नाम एसआईआर की मसौदा सूची में थे। बीएलओ अमर बहादुर ने जब उन्हें बताया कि 16 नाम हटाने के लिए फॉर्म 7 के आवेदन मिले हैं, तो वह स्तब्ध रह गए। समाजवादी पार्टी ने फतेहपुर जिले में भाजपा मंडल अध्यक्ष सावित्री देवी पर 72 आपत्तियां दर्ज कराने का आरोप लगाया। 'संडे नवजीवन' ने सावित्री देवी से संपर्क की कोशिश की लेकिन प्रयास विफल रहा।

"प्ररूप-7
(नियम 13(2) और 26 देखें)
प्ररूप सं० ____
(कार्यालय द्वारा भरा जाए)
भारत निर्वाचन आयोग
विद्यमान निर्वाचक नामावली में नाम को सम्मिलित करने के प्रस्ताव के लिए आक्षेप हेतु मतदाता आवेदन प्ररूप
सेवा में,
निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण ऑफिसर,
सं. और विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र का नामः सं. 184 नाम Jagdishpur
या सं. और संसदीय निर्वाचन क्षेत्र का नाम सं. ____ नाम ____
(@ केवल उन संघ राज्यक्षेत्रों के लिए जहां विधानसभा नहीं है)
मैं विद्यमान निर्वाचक नामावली में प्रस्तावित नाम को सम्मिलित करने के प्रस्ताव के लिए आक्षेप हेतु आवेदन प्रस्तुत करता हूं।
(1) आवेदक का नाम
ईपीआईसी सं.
स्वयं का मोबाइल संख्या (या)
नातेदार का मोबाइल संख्या
(2) आवेदन / आक्षेप का विकल्पः (समुचित विकल्प पर सही का निशान लगाएं) (कोई एक)
(i) मैं वर्तमान नामावली में पहले से सम्मिलित नीचे उल्लिखित व्यक्ति के नाम को निम्नलिखित कारणों में से किसी एक कारण से हटाने का अनुरोध करता हूं। (किसी एक पर सही का निशान लगाएं)
मृत्यु | अवयस्क | अनुपस्थित / स्थायी रूप से स्थानांतरित
पहले से नामांकित | भारतीय नागरिक नहीं है।
✓ (ii) मैं निम्नलिखित कारणों में से किसी एक कारण से वर्तमान नामावली में नीचे उल्लिखित व्यक्ति के नाम को सम्मिलित करने के प्रस्ताव पर आक्षेप करता हूं। (किसी एक पर सही का निशान लगाएं)
मृत्यु | अवयस्क | ✓ अनुपस्थित / स्थायी रूप से स्थानांतरित
पहले से नामांकित | भारतीय नागरिक नहीं है।
(iii) मैं निम्नलिखित कारणों में से किसी एक कारण से निर्वाचक नामावली से अपने नाम को हटाने का अनुरोध करता हूं (किसी एक पर सही का निशान लगाएं)
स्थायी रूप से स्थानांतरित | पहले से नामांकित | भारतीय नागरिक नहीं है।
मृत्यु प्रमाणपत्र संलग्न (समुचित विकल्प पर सही का निशान लगाएं) हां | नहीं
SHAKIRA BANO RZU0759761
BARSANDA MUSAFIRKHANA
AMETHI Uttar Pradesh

ईसीआई की 2023 की नियमावली भी, जिसमें फॉर्म 7 के संशोधित नियम शामिल हैं, थोक के भाव में फॉर्म 7 आवेदन जमा करने की इजाजत नहीं देती। बूथ स्तर का एजेंट (बीएलए) भी एक दिन में अधिकतम 10 फॉर्म ही जमा कर सकता है। यहां तक व्यवस्था है कि अगर कोई बीएलए रोल के संशोधन के दौरान 30 से अधिक आवेदन जमा करता है, तो ईआरओ और एईआरओ को सभी आवेदनों का व्यक्तिगत रूप से सत्यापन करना होगा।

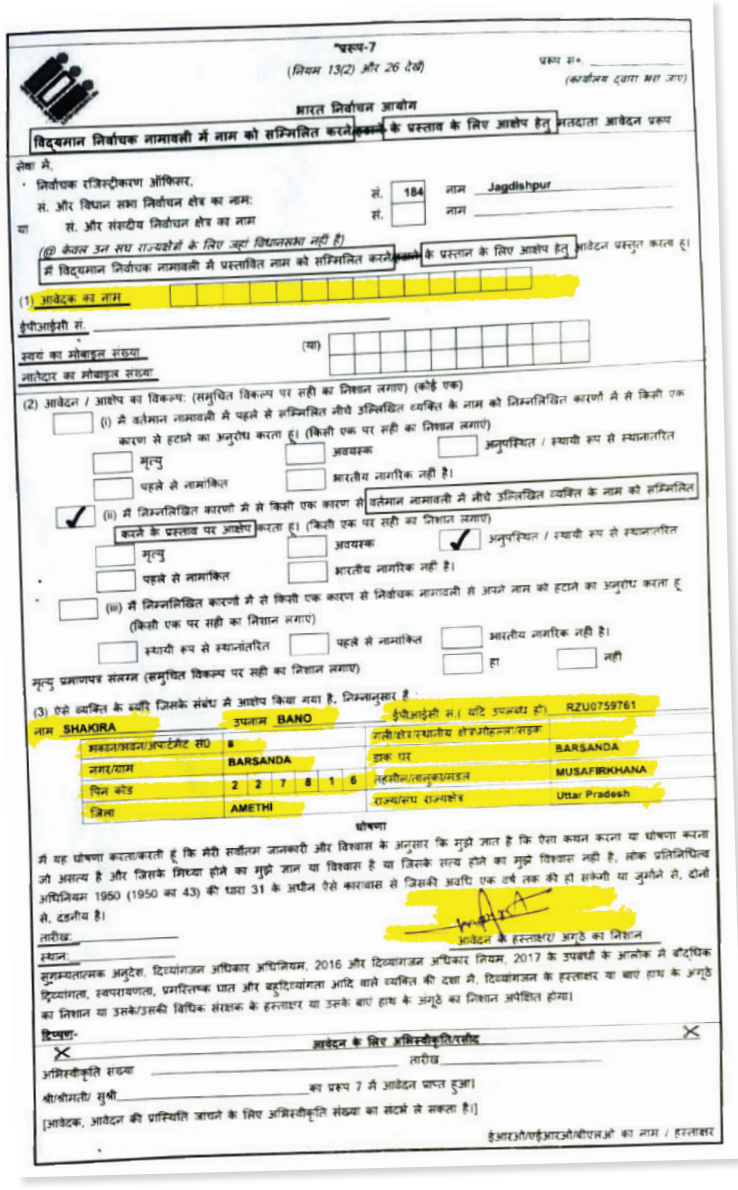

गुजरात के सोमनाथ निर्वाचन क्षेत्र में 'न्यूजलॉन्ड्री' की एक जांच में सामने आया कि जनवरी 2026 में, 269 आपत्तिकर्ताओं ने 15,663 मतदाताओं के नाम हटाने के लिए पहले से भरे हुए फॉर्म थोक में जमा किए थे। मतदाताओं का ब्योरा अंग्रेजी में था, जबकि आपत्तिकर्ताओं का ब्योरा गुजराती में हाथ से लिखा गया हुआ।

आपत्ति जताने वाले 269 लोगों में से प्रत्येक ने फॉर्म 7 के 50 या उससे अधिक आवेदन जमा किए थे। इनमें सोमनाथ भाजपा महिला विंग की अध्यक्ष मंजुलाबेन सुयानी और वेरावल और पाटन कस्बों के 29 भाजपा पार्षद शामिल थे। कम-से-कम छह लोगों ने इनकार किया कि फॉर्म पर हस्ताक्षर उन्होंने किया था।

फरवरी 2026 में 'क्विंट' की एक जांच में खुलासा हुआ कि राजस्थान के अलवर जिले में मुस्लिम मतदाताओं के नाम हटाने के लिए हजारों फॉर्म 7 जमा किए जाने के एक महीने बाद भी ऐसी कोई जांच नहीं हुई कि ये फॉर्म कहां से छपे, किसने इन्हें भरा और हस्ताक्षर किए और क्या हस्ताक्षर प्रामाणिक थे?

शेष पेज 2 पर ▸

मतदान के अधिकार की सरेआम, सुव्यवस्थित लूट

पेज एक का शेष

चुनाव आयोग को गलत जानकारी देना लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत कारावास और जुर्माने का कारण बन सकता है। आयोग ने यदि इस विशेष अभियान के दौरान ऐसा करने के लिए किसी पर मुकदमा चलाया है, तो यह एक 'सर्वज्ञात रहस्य' है।

*

फॉर्म 7 के दुरुपयोग की खबरें सामने आने के बावजूद, उत्तर प्रदेश में मतदाता सूची के मसौदे पर आपत्ति दर्ज कराने की समय सीमा 6 मार्च तक बढ़ा दी गई है। अमेठी के जगदीशपुर विधानसभा क्षेत्र में, पर्यवेक्षक रामकुमार द्वारा कथित तौर पर बीएलओ के बीच सैकड़ों फॉर्म बांटे जाने की खबर है।

मतदान अधिकारी अमर बहादुर को बूथ संख्या 126 पर 167 मतदाताओं (सभी मुस्लिम) के नाम हटाने के लिए 126 फॉर्म मिले। निर्वाचन क्षेत्र में आठ मतदान केन्द्रों (122 से 129) की निगरानी का जिम्मा संभालने वाले रामकुमार का दावा है कि उन्हें ये फॉर्म तहसील के चुनाव कार्यालय प्रभारी तेज बहादुर ने दिए थे।

'संडे नवजीवन' के पास दर्जनों ऐसे भरे हुए फॉर्म के फोटो हैं, जो जमा किए जाने से पहले खींचे गए। इन सभी फॉर्मों पर आपत्तिकर्ताओं के हस्ताक्षर तो हैं, लेकिन उनके नाम या अन्य अनिवार्य ब्योरा (पता, रिश्तेदार का नाम, मोबाइल नंबर) नहीं हैं। हालांकि, मतदाता का ब्योरा बड़े अक्षरों में टाइप किया या मुद्रित है। ये सभी मुस्लिम नाम हैं और मुसाफिरखाना तहसील के बरसंडा पोस्ट ऑफिस के रहने वाले।

बरसंडा गांव की मुखिया संजीदा बानो ने उन चार ग्रामीणों से पूछताछ की जिनके नाम डिलीट करने के प्रयास के संबंध में सामने आए थे। उनमें से एक, पवन कुमार ने कई फॉर्मों पर हस्ताक्षर करने की बात स्वीकार की, लेकिन अन्य तीन ने अपनी संलिप्तता से इनकार किया। भाजपा कार्यकर्ता पवन ने यह भी माना कि चूंकि फॉर्म ज्यादा थे, इसलिए कुछ पर उसने अपनी बेटी से हस्ताक्षर करवाए थे।

सोशल मीडिया पर भी ऐसी कई घटनाएं सामने आई हैं। समाजवादी पार्टी के प्रमुख अखिलेश यादव ने एक वीडियो क्लिप साझा की है जिसमें, संत कबीर नगर जिले के एक पार्टी नेता फोन पर किसी से बात कर रहे हैं, जो कहता है कि उसे लक्ष्मी शंकर शुक्ला ने 126 फॉर्म दिए थे, और जो उन्हें विधायक अनिल तिवारी से मिले थे। सिद्धार्थनगर जिले में एक बीएलओ पुजारी प्रसाद यादव ने माना कि धर्मेंद्र मौर्य उनके पास नाम हटाने के 86 फॉर्म लेकर आए थे, और उन्हें ये फॉर्म जमा कराने के वास्ते तहसील कार्यालय से मिले थे। यादव ने सभी मतदाताओं को वास्तविक और उपस्थित पाया, जिसका उल्लेख वह अपनी रिपोर्ट में करने वाले थे।

इटावा के एक प्राथमिक विद्यालय में सहायक शिक्षक और बीएलओ के रूप में कार्यरत अश्विनी कुमार ने बताया कि जब उन्होंने अपने फोन से उन फॉर्मों की तस्वीरें लेनी चाही, जिन्हें ध्रुव कठेरिया और उदय प्रताप उनसे स्वीकार करवाना चाहते थे, दोनों ने उन पर हमला कर दिया। अमेठी की बीएलओ सुभद्रा मौर्य ने बताया कि उनके द्वारा मुस्लिम मतदाताओं के नाम हटाने से इनकार करने पर उनके पति के साथ दुर्व्यवहार और मारपीट की गई।

'न्यूजलॉन्ड्री' ने पूर्व चुनाव आयुक्तों से इस पर उनकी प्रतिक्रिया जानने के लिए संपर्क किया: अशोक लवासा का सवाल था- "फॉर्म 7 भला पहले से कैसे भरा जा सकता है?" पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त एस.वाई. कुरैशी ने नाराजगी भरे स्वर में कहा, "पूरे देश में यही हो रहा है हम लोकतंत्र के पतन के कगार पर हैं।" ■

भारत-बांग्लादेश फिर बनेंगे दोस्त?

सौरभ सेन

मतगणना बांग्लादेश संसदीय चुनाव के लिए हुए मतदान के बाद मतों की गिनती

बांग्लादेश में जब वोटों की गिनती चल ही रही थी, बीएनपी के एक वरिष्ठ नेता ने इन पंक्तियों के लेखक से कहा, 'जिलों से मिली जमीनी रिपोर्ट और रिटर्निंग ऑफिसर के जारी सर्टिफिकेट दो-तिहाई बहुमत की ओर इशारा कर रहे हैं।' अंतिम नतीजों ने उनके अंदाजे को सही साबित कर दिया। बीएनपी की तुलना में जमात ज्यादा गोल-गोल बातें कर रही थी। जमात के महासचिव मिया गुलाम परवार ने उस वक्त कहा था, 'मुझे अपने चुनाव क्षेत्र (खुलना-5) में जीत का भरोसा है, लेकिन कुल मिलाकर गिनती पर कोई टिप्पणी नहीं करना चाहूंगा।' आखिर में परवार बीएनपी के मोहम्मद अली असगर से हार गए।

जमात-ए-इस्लामी और बीएनपी एक समय अवामी लीग के दबदबे का मुकाबला करने वाले साथी थे, और जमात के सड़कों पर उतरने से बीएनपी के अभियान को मजबूती मिली। जमात ने नतीजों पर सवाल उठाए हैं, और बीएनपी पर सरकारी मशीनरी के जरिये धांधली करने का आरोप लगाया है। खुद को 2024 के विद्रोह का 'असली' प्रतिनिधि बताते हुए, जमात तर्क देती है कि बीएनपी का आना बस एक तानाशाही को दूसरे से बदलना है।

दोनों के लिए आगे मुश्किल समय है। बीएनपी को जल्दी साबित करना होगा कि वह राज करने वाली पार्टी है और उसने पिछली गलतियों से सीखा है। वहीं, जमात को साबित करना होगा कि वह एक जिम्मेदार विपक्ष हो सकती है।

हालांकि जमात ने अपने रुख और छवि को नरम किया है, लेकिन इसने 1971 में देश की आजादी का विरोध करने वाले इस्लामी कट्टरपंथी का टैग नहीं हटाया है। कुछ लोगों का मानना था कि जमात को अमेरिका और पाकिस्तान का समर्थन है और पैसों की उसके पास कमी नहीं, इसलिए वह जीत जाएगी। बहरहाल, जानकारों का कहना है कि जमात की हार प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष बांग्लादेश की जीत का संकेत है।

नतीजों से यह भी पता चलता है कि अवामी लीग को चुनाव में हिस्सा लेने से रोकने के बाद भी जनता में उसकी पकड़ बनी हुई है। बड़ी संख्या में लोगों ने बैलेट पेपर पर लिखा- 'नाव नहीं, तो वोट नहीं'। गौरतलब है कि अवामी लीग का चुनाव चिह्न नाव रहा है। इसके अलावा करीब 40 फीसद लोगों ने वोट नहीं किया और माना जा रहा है कि इसमें बड़ी संख्या में अवामी लीग के समर्थक थे। चुनाव में बीएनपी ने 200 से ज्यादा सीटें जीतीं जबकि जमात को अपने सहयोगी नेशनल सिटीजन पार्टी (एनसीपी) के साथ मिलकर भी 70 से कम सीटें मिलीं।

चुनाव नतीजे यह भी बताते हैं कि बांग्लादेश की महिलाओं, पहली बार वोट देने वालों और युवा मतदाताओं ने जमात के इस्लामी नैरेटिव के खिलाफ वोट दिया। लगभग 5.6 करोड़ या 44 फीसद वोटर 18 से 37 साल की उम्र के थे, और लगभग 50 लाख पहली बार वोट दे रहे थे। जमात की सीटों की संख्या बढ़ी है, यह देखते हुए कि 1991 में इसने सिर्फ 18 सीटें और 2001 में 17 सीटें जीती थीं, जब वह बीएनपी के साथ गठबंधन में थी।

संसद में पचास और सदस्य, जो सभी महिलाएं होंगी, बाद में संसद में शामिल होंगी। इन्हें राजनीतिक पार्टियों द्वारा जीती गई सीटों के आधार पर आनुपातिक बंटवारे के मुताबिक चुना जाएगा।

*

पहले भारत के साथ बीएनपी के रिश्ते अच्छे नहीं रहे। इसके बावजूद बांग्लादेश का इस्लामी नैरेटिव को नकारना और 1971 की आजादी की विरासत को फिर से जिंदा करना- दोनों देशों के रिश्तों पर बहुत बड़ा असर डालेंगे। यह दोनों देशों के लिए अपने रिश्तों को फिर से ठीक करने और एक नई शुरुआत करने का मौका है। बीएनपी प्रमुख तारिक रहमान ने भारत के साथ एक बराबर और इज्जतदार पार्टनर की हैसियत से रिश्तों को आगे बढ़ाने की इच्छा जताई भी है।

हाल-फिलहाल नई दिल्ली में बांग्लादेश को दो नजरियों से देखा जाता रहा। हाल ही में एक इंटरव्यू में पूर्व नौकरशाह और बांग्लादेश मामलों की जानकार वीना सिकरी ने कहा: 'हम जानते हैं कि बांग्लादेश में सरकार बदलने के ऑपरेशन को पश्चिमी ताकतों का समर्थन था, लेकिन यह पाकिस्तान के जरिये किया गया और बांग्लादेश में पाकिस्तान का सबसे बड़ा जरिया जमात-ए-इस्लामी है'।

जमात के नेतृत्व वाले बांग्लादेशी इस्लामियों के पाकिस्तान के साथ नजदीकी बढ़ाने और हिन्दुओं पर जुल्म करने के हौवे ने चुनाव वाले पश्चिम बंगाल और असम में धार्मिक ध्रुवीकरण पर आधारित भाजपाई अभियान में मदद की। जमात की जबरदस्त हार इस नैरेटिव को कमजोर करेगी।

बांग्लादेश के नतीजे नई दिल्ली के दूसरे नजरिये को मजबूत करेंगे जो ज्यादा व्यापक है और इसे विदेश मंत्री एस. जयशंकर और भारत और बांग्लादेश के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार- अजीत डोभाल और खलीलुर रहमान- आगे बढ़ा रहे हैं।

बीएनपी का स्पष्ट जनादेश के साथ सत्ता में आना दोनों पड़ोसियों के लिए एक मौका है। प्रधानमंत्री मोदी और कांग्रेस अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खड़गे की तरफ से प्रधानमंत्री बनने जा रहे तारिक रहमान को बधाई संदेश दिल्ली की फिर से बातचीत करने की इच्छा का संकेत देते हैं। ■

> बीएनपी को जल्दी साबित करना होगा कि वह राज करने वाली पार्टी है और उसने गलतियों से सीखा है। जमात को साबित करना होगा कि वह एक जिम्मेदार विपक्ष हो सकती है

सौरभ सेन कोलकाता में रहने वाले स्वतंत्र लेखक और टिप्पणीकार हैं।

राज्य 360° दिसपुर असम

परिसीमन की पृष्ठभूमि में पहला चुनाव

दीपरा सरमाबरुआ

शिकायत विपक्ष ने भाजपा पर वास्तविक मतदाताओं के नाम हटाने की साजिश रचने के लिए पुलिस में शिकायत दर्ज कराई है

असम में इस बार का विधानसभा चुनाव 2023 में हुए विवादित परिसीमन के बाद पहला होगा। परिसीमन से 126 में से लगभग 40 चुनाव क्षेत्र प्रभावित हुए, और इससे काफी भ्रम भी हुआ।

हालांकि चुनाव क्षेत्रों की संख्या वही है, लेकिन कई के नाम बदल गए हैं, सीमाएं बदली हैं और कुछ मामलों में, दो अलग-अलग चुनाव क्षेत्रों को मिला दिया गया है (जैसे, हाजो-सुआलकुची, भबनीपुर-सोरबाग)।

गुवाहाटी के भी तमाम मतदाताओं को अंदाजा नहीं कि वे किस क्षेत्र में हैं। यह भ्रम राजनीतिक दलों तक में है। पार्टी कार्यकर्ता राज्य में मतदाता सूची के स्पेशल रिवीजन (एसआर) के बाद 10 फरवरी 2026 को चुनाव आयोग द्वारा जारी अंतिम मतदाता सूची की जांच-पड़ताल में जुटे हैं। राजनीतिक दलों के पास एक और काम है- चुनाव क्षेत्रों की बदली प्रकृति और जनसांख्यिकी को ध्यान में रखते हुए सही उम्मीदवार खोजना।

2022 में जम्मू और कश्मीर में भी ऐसे ही नतीजे पाने के लिहाज से इसी तरह परिसमीन किया गया था। जम्मू-कश्मीर में छह नए चुनाव क्षेत्र जोड़े गए; असम में, विधानसभा सीटों की संख्या वही रही। हालांकि, असम कैबिनेट ने पहले ही चार जिलों को उनके पुराने जिलों में वापस मिला दिया है जिससे जिलों की संख्या 35 से घटकर 31 हो गई। इस विलय से कई मुस्लिम बहुल निर्वाचन क्षेत्र - दक्षिण सलमारा, बारपेटा (दो सीटें), दरांग, नौगांव, सिबसागर, हैलाकांडी और करीमगंज - गायब हो गए जबकि हिन्दुओं और आदिवासी प्रभुत्व वाली सीटों की संख्या बढ़ गई। जम्मू-कश्मीर की तरह, असम में भी परिसीमन से अलग-अलग आबादी वाले चुनाव क्षेत्र एक-दूसरे से सटे हुए बन गए। अलग-अलग परिसीमन आयोगों ने अल्पसंख्यकों को और हाशिये पर डालने के लिए बड़ी आबादी वाले चुनाव क्षेत्रों के साथ-साथ छोटी आबादी वाले क्षेत्र बनाने में कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई।

परिसीमन से पहले 126 में से 30 चुनाव क्षेत्रों में मुस्लिम वोटरों का दबदबा था। इसके अलावा 10 चुनाव क्षेत्रों में वे नतीजे को प्रभावित करने की स्थिति में थे। परिसीमन के बाद, ऐसे चुनाव क्षेत्रों की संख्या आधी हो जाने का अनुमान है। 2011 की जनगणना में राज्य की आबादी में मुसलमानों की हिस्सेदारी 34 फीसद थी और मौजूदा सदन में मुस्लिम विधायकों की संख्या 31 है। कोशिश है कि उनकी संख्या को घटाकर कुल विधायकों के मुकाबले छठा हिस्सा कर दिया जाए।

ऐसा करना शायद इसलिए जरूरी था कि पिछले चुनाव में भाजपा के नेतृत्व वाले गठबंधन को 75 सीटें मिली थीं, जबकि कांग्रेस के नेतृत्व वाले गठबंधन को 50 सीटें। कांटे की टक्कर वाले चुनाव में हर सीट मायने रखती है। इसे देखते हुए भाजपा ने परिसीमन और एसआर, दोनों का हर तरीके से अपने फायदे के लिए इस्तेमाल किया है। हैरानी है कि राज्य में दोनों में से कोई भी राजनीतिक मुद्दा नहीं बना। विपक्ष ने परिसीमन और एसआर को 'तयशुदा बात' मानकर शायद एक मौका गंवा दिया।

> परिसीमन से पहले 126 में से 30 चुनाव क्षेत्रों में मुस्लिम वोटरों का दबदबा था। परिसीमन के बाद ऐसे चुनाव क्षेत्रों की संख्या आधी हो जाने का अनुमान है

हालांकि, चुनाव की तारीखों की घोषणा से पहले दोनों गठबंधन डगमग दिख रहे हैं। क्षेत्रीय पार्टी रायजोर दल के जनवरी तक सीट-साझेदारी कर लेने के अल्टीमेटम के बावजूद कांग्रेस के साथ बातचीत फरवरी तक खिंच गई। कांग्रेस और लुरिनज्योति गोगोई की असम जातियो परिषद के बीच भी बातचीत चल रही है। इस बीच, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने सात उम्मीदवार घोषित कर दिए हैं, जो एकता की कमी और मतभेद का संकेत है। विपक्ष के लिए अच्छी बात यह है कि सत्ताधारी एनडीए की अपनी दिक्कतें हैं। भाजपा के अंदर बढ़ती खींचतान और हिमंत बिस्वा सरमा विरोधी ताकतों के चाकू तेज करने के अलावा, सहयोगी असम गण परिषद (एजीपी) और बोडोलैंड पीपुल्स फ्रंट (बीपीएफ) ज्यादा सीटों की मांग कर रहे हैं। बीपीएफ और प्रमोद बोरो के नेतृत्व वाली एक अन्य बोडो मूलनिवासी पार्टी यूनाइटेड पीपुल्स पार्टी लिबरल के बीच तनातनी से सीटों का बंटवारा और मुश्किल हो गया है। भाजपा एजीपी को निचले असम में मुस्लिम-बहुल सीटों से चुनाव लड़ने के लिए कह रही है।

*

इस बंटे माहौल में असम भाजपा के आधिकारिक एक्स हैंडल से एक एनिमेशन शेयर किया गया जिसमें मुख्यमंत्री को एक काउबॉय के तौर पर दिखाया गया था जो गोल टोपी पहने एक दाढ़ी वाले पर बिल्कुल नजदीक से गोली चलाते दिखाया गया था। कैप्शन था 'विदेशी-मुक्त असम' और 'कोई दया नहीं'। इसपर जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई और पार्टी को वह एनिमेशन हटाना पड़ा। बिस्वा सरमा ने भी यह कहते हुए पल्ला झाड़ा कि न तो उन्होंने वह वीडियो बनाया और न साझा किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि बांग्लादेश से घुसपैठियों को निशाना बनाना उनका काम है। उन्होंने साफ किया कि जब वह 'मिया मुसलमानों' की बात करते हैं, तो उनका मतलब बांग्लादेश के बांग्लाभाषी मुसलमानों से होता है, न कि असमिया मुसलमानों से।

बिस्वा सरमा पर अब तक हेट स्पीच की आंच नहीं आई और उन्हें उम्मीद नहीं रही होगी कि सिविल सोसाइटी के 40 से ज्यादा जाने-माने लोग गुवाहाटी हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस से शिकायत करते हुए न्यायिक दखल और कार्रवाई की मांग करेंगे। राज्य के जाने-माने बुद्धिजीवियों, जिनमें हिरेन गोहेन, लेखक और पूर्व डीजीपी हरेकृष्ण डेका, पूर्व आर्कबिशप थॉमस मेनमपरम्पिल, राज्यसभा सदस्य अजीत कुमार भुयान और 'नॉर्थईस्ट नाउ' के एडिटर-इन-चीफ परेश मालाकार शामिल हैं, के नेतृत्व में मुख्य न्यायाधीश को लिखे पत्र पर कवियों, लेखकों, पूर्व आईएएस अधिकारियों, वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों ने दस्तखत किए थे।

दस्तखत करने वालों ने कोर्ट का ध्यान मुख्यमंत्री के उन सार्वजनिक बयानों की ओर दिलाया, जिनमें उन्होंने लोगों से कहा था कि वे सुनिश्चत करें कि 'मियाओं को तकलीफ' हो और अधिकारियों से भी इसके लिए ओवरटाइम करने को कहा था। दस्तखत करने वालों ने कहा कि ऐसे बयान किसी संवैधानिक पद पर बैठे व्यक्ति को शोभा नहीं देते। पत्र में यह भी बताया गया कि मुख्यमंत्री ने भाजपा कार्यकर्ताओं को वोटर लिस्ट में मियाओं के खिलाफ ऑब्जेक्शन फाइल करने का निर्देश देकर मतदाता सूची के स्पेशल रिवीजन की अर्द्ध-न्यायिक प्रक्रिया में दखल देने की कोशिश की। मुख्यमंत्री के इस बयान का हवाला देते हुए कि अगर कोई रिक्शा चलाने वाला 'मिया' है और किराया पांच रुपये बनता है, तो लोगों को सिर्फ चार रुपये देने चाहिए, पत्र में जोर दिया गया कि यह एक समुदाय को शारीरिक नुकसान, आर्थिक भेदभाव और सामाजिक बेइज्जती का सीधा आह्वान है।

कई सालों से हिमंता बिस्वा सरमा 'मिया मुसलमानों' को निशाना बना रहे हैं। 2023 में, मुख्यमंत्री ने कहा, 'लोग मुझसे सब्जियों की कीमतों के बारे में पूछते हैं। गांवों में कीमतें कम हैं। यहां, वे (मुस्लिम विक्रेता) असम के मूल निवासियों को ऊंची कीमतों पर बेचते हैं'। मीडिया ऐसे बयानों को ले उड़ा। क्या इस बार वह बहुत आगे निकल गए हैं? क्या अल्पसंख्यकों पर हमले का अब कोई फायदा नहीं हो रहा?

हिमंता बिस्वा सरमा की सांसद और प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष गौरव गोगोई को 'पाकिस्तानी एजेंट' बताने का वैसा असर नहीं हुआ जैसा सोचा गया होगा। असम पुलिस की एसआईटी की दो घंटे लंबी ड्रामाई प्रेस कॉन्फ्रेंस और रिपोर्ट जारी करने से दो बातें सामने आईं: गोगोई की ब्रिटिश पत्नी ने एक साल तक एक पाकिस्तानी एनजीओ के लिए काम किया था; और गोगोई 2013 में पाकिस्तान गए थे (जब वह सांसद नहीं थे)। पिछले एक साल में बार-बार लगाए गए इन आरोपों का असर अब कम हो गया है। गोगोई ने सही सवाल उठाया: अगर वह सच में राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा थे, तो एसआईटी ने उनसे एक बार भी पूछताछ क्यों नहीं की?

रायजोर दल के प्रमुख अखिल गोगोई ने कहा: 'मुख्यमंत्री ने फेसबुक पोस्ट और कविताओं के लिए लोगों को गिरफ्तार करवाया है; लेकिन वह एक ऐसे नेता को गिरफ्तार नहीं कर पा रहे जिसपर वह सुरक्षा के लिए खतरा होने का आरोप लगा रहे हैं!' ■

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

ड्रग्स और भ्रष्टाचार का 'गुजरात मॉडल'

गुजरात कांग्रेस अध्यक्ष अमित चावड़ा जन आक्रोश यात्रा के दौरान उन मुद्दों की जमीनी जानकारी जुटा रहे हैं जिनसे राज्य की जनता रू-ब-रू हो रही है। इस दौरान ये बातें भी बार-बार सामने आ रहीं कि मनरेगा के जरिये भाजपा नेताओं ने अरबों रुपये अपने पॉकेट में रख लिए। यात्रा के क्रम में **विश्वदीपक** से हुई अमित चावड़ा की बातचीत के अंशः

पांच चरणों वाली इस जन आक्रोश यात्रा की वजह क्या रही है और इसका मकसद क्या है?

भाजपा यहां पिछले 35 सालों से सत्ता में है। 2022 में जब यह सत्ता लौटी, तो पिछले छह टर्म में कोई काम नहीं करने के बावजूद लोगों में कुछ उम्मीद बंध गई। उन्हें लगता था कि कम-से-कम इस बार तो भाजपा कुछ काम करेगी। लेकिन तीन साल बीत जाने पर भाजपा सरकार का प्रदर्शन जीरो रहा है।

2014 में नरेन्द्र मोदी और अमित शाह के दिल्ली चले जाने के बाद भाजपा का स्थानीय नेतृत्व खत्म ही हो गया है। ब्यूरोक्रेट्स भ्रष्ट नेताओं के साथ मिलकर सरकार चला रहे हैं। भ्रष्टाचार यहां प्रमुख मुद्दा बन गया है।

इसका पैटर्न उसी तरह है। भाजपा सरकार टेंडर निकालती है। ब्यूरोक्रेट्स उसे ओके करते हैं। फिर, भाजपा के ही किसी नेता की कंपनी को टेंडर मिल जाता है। इसमें ब्यूरोक्रेट को भी कट मिलता है। सत्ता में बैठे लोग प्रसन्न रहते हैं और यह चक्र चलता रहता है।

पहले सीएलपी के तौर पर मैं जनमंच कार्यक्रम के तहत हर ब्लॉक में जाकर जनसुनवाई करता था। अभी पिछले साल जुलाई में प्रदेश अध्यक्ष बना, तो मैंने सोचा कि क्यों न उसी कार्यक्रम को आगे बढ़ाया जाए। इसी सोच के तहत मैंने पूरे राज्य में जन आक्रोश यात्रा निकालने का फैसला किया। इसका मकसद लोगों के बीच जाकर उनके मुद्दे सुनना, फिर उन्हें हाईलाइट करना और फिर, उनका समाधान निकालना है।

यात्रा 4 नवंबर 2025 को आरंभ हुई। हमने 13 दिनों में 1,300 किलोमीटर की यात्रा में पूरा उत्तर गुजरात कवर किया। फिर सेंट्रल गुजरात में खेड़ा जिले से शुरू करके दाहौद में समाप्त किया। 16 दिनों की यात्रा में 1,400 किलोमीटर कवर किया। तीसरे फेज में हमने 2 फरवरी को दक्षिण गुजरात में वलसाड जिले से शुरुआत की। इसका समापन 12 तारीख को है।

लोगों को कौन से मुद्दे परेशान कर रहे हैं?

यह बात खासतौर से उभर कर आई है कि महिलाएं महंगाई से तो परेशान हैं ही, शराब और ड्रग्स की वजह से गुजरात का हर घर परेशान है। पुलिस और प्रशासन में बैठे लोगों को हर हफ्ते करोड़ों मिलते हैं। शराबबंदी के बावजूद गली-गली में अवैध शराब मिलती है। खुलेआम ड्रग्स का कारोबार हो रहा है।

महिलाओं का कहना है कि छोटी उम्र में बच्चों को शराब की लत लग रही है। कम उम्र में ही बच्चों की मौत हो रही है। इस वजह से लड़कियां छोटी उम्र में ही विधवा हो जाती हैं। हर गांव में बिकने वाली शराब के लिए पुलिस हफ्ता वसूलती है। महिलाओं के लिए यह सबसे बड़ा मुद्दा है।

संसद को सूचना दी गई कि 6 साल में 30 हजार किलो ड्रग्स मुंद्रा पोर्ट में पकड़ी गई है। मुंद्रा पोर्ट में जिस तरह से बार-बार ड्रग्स पकड़े जा रहे हैं, इसका मतलब है कि गुजरात ड्रग्स का लैंडिंग हब बन गया है।

और अब तो गुजरात इसका मैन्युफैक्चरिंग हब भी बन गया है। आप देखेंगे कि गुजरात में बहुत-सी कंपनियां ऐसी हैं जो फार्मास्युटिकल्स कहलाती हैं लेकिन वे, दरअसल, सिंथेटिक ड्रग्स बनाती हैं। इसका नेटवर्क इस तरह है कि हर कॉलेज के आसपास, यूनिवर्सिटी में ड्रग्स बिकने लगा है। ड्रग्स के कारोबारी एजुकेशन कैंपस को खासतौर से टारगेट करते हैं।

मनरेगा अब तो केन्द्र सरकार ने ही खत्म कर दी है लेकिन मीडिया में ऐसी रिपोर्टें छपी हैं कि इसमें काफी भ्रष्टाचार रहा है। आपको इसके प्रमाण मिले?

मनरेगा में पूरे गुजरात में भयंकर भ्रष्टाचार है। मैंने असेंबली में यह मुद्दा उठाया, और मंत्री बच्चू भाई खावड़ और उनके बेटे के इसमें भागीदार होने की बातें बताईं। इस वजह से खावड़ को अपने पद से हाथ धोना पड़ा और उनके दोनों बेटों को जेल जाना पड़ा।

पूरे राज्य में मेटेरियल कंपोनेंट को बढ़ाकर 80 प्रतिशत तक ले गए जबकि लेबर कंपोनेंट को घटाकर 20 प्रतिशत कर दिया। स्पॉट पर कोई काम नहीं होता है लेकिन पेमेंट होता रहता है। हमारा आकलन है कि एक हजार करोड़ से ज्यादा का घोटाला तो केवल तीन से चार जिलों को मिलाकर हुआ होगा।

दाहोड़, पंचमहल, छोटा उदयपुर, महिसागर - इन जिलों में हजारों करोड़ के घोटाला होने के सबूत हमने सरकार को पेश भी किए लेकिन कार्रवाई नहीं हुई।

पंचमहल जिले में जम्बू घोड़ा ब्लॉक की कुल आबादी है 42 हजार। जम्बू घोड़ा तालुका में 26 गांव हैं। मनरेगा के तहत इन 26 गांवों में तीन साल में 300 करोड़ रुपये के काम किए गए। सोचिए, ऐसा कैसे हो सकता है?

यहां मेटेरियल सप्लाई करने में चार एजेंसियों को लगाया गया। इसमें से एक एजेंसी जिला भाजपा अध्यक्ष की है। दूसरी एजेंसी उनके पत्नी की है। तीसरी एजेंसी उनके भतीजे के नाम पर है। मेटेरियल सप्लाई करने वाली चौथी एजेंसी उनके ड्राइवर की है। इस सिर्फ एक ब्लॉक में भाजपा नेता और उसके परिवार ने मनरेगा के तहत 150-200 करोड़ का घोटाला किया। मैंने स्पॉट पर जाकर विजिट किया और प्रमाण के साथ इस मुद्दे को विधानसभा में उठाया। लेकिन भाजपा सरकार ने कोई कार्रवाई नहीं की क्योंकि इसमें खुद उसके नेता और ब्यूरोक्रेट्स फंसे हुए हैं।

तब तो वीबी ग्राम जी के बाद सरकार की मनमानी और बढ़ जाएगी। इस मुद्दे को कैसे उठा रहे हैं?

हम लोगों को बता रहे हैं कि कैसे गुजरात के सबसे महान नेता और भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का अपमान किया गया है, कैसे भाजपा ने मनरेगा से उनका नाम हटा दिया है। सबसे बड़ी बात कि मोदी ने कानून को बदलकर इसे स्कीम बना दिया है। कानून में वैधानिक गारंटी रहती है, लेकिन स्कीम तो कभी भी बंद की जा सकती है।

विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) का मुद्दा काफी गरम है पूरे देश में। अन्य राज्यों से तो खबरें आती हैं लेकिन गुजरात से इस मुद्दे पर कोई शोर शराबा नहीं हुआ। एसआईआर की क्या स्थिति है यहां?

गुजरात की वोटर लिस्ट में 12 परसेंट फर्जी वोटर हैं। मोदी सरकार में मंत्री सी आर पाटिल की लोकसभा सीट है नवसारी। वहां का सैंपल लेकर हमने बताया कि कैसे गुजरात में फर्जी वोटर्स बड़ी संख्या में वोटर लिस्ट में शामिल हैं।

फॉर्म 7 के तहत आवेदन के आधार पर वोटर लिस्ट से नाम हटाने की कोई शिकायत आई है?

नियमों के तहत, फॉर्म 7 के तहत अगर किसी को ऑब्जेक्शन करना है तो वह फॉर्म लेकर उसे वोटर का नाम अपने हाथ से लिखना है। लेकिन भाजपा के नेताओं और कार्यकर्ताओं ने जो फॉर्म बंटवाए, उनमें वोटर्स के नाम उस पर पहले से प्रिंटेड थे। और ऐसा पूरे राज्य में हुआ। हर विधानसभा क्षेत्र में भाजपा कार्यकर्ताओं ने ऐसे फॉर्म सिर्फ हस्ताक्षर कर जमा किए। पर कई लोग ऐसे निकले जिनका कहना था कि मैंने तो फॉर्म 7 का ऑब्जेक्शन दाखिल ही नहीं किया और मेरे नाम का मिस्यूज किया गया।

मैं खुद ईसीआई के ऑफिस कई बार गया। मुझे ईसीआई ने पहले दिन कहा कि 12 लाख से ऊपर फॉर्म आए हैं लेकिन जब हमने प्रेशर बढ़ाया तो पहले कहा कि 9 लाख आए हैं। बाद में कहा कि दो लाख फॉर्म आए हैं। हमलोग मांग कर रहे हैं कि जिनलोगों ने गलत फॉर्म दिए हैं, उनके खिलाफ कार्रवाई की जाए। हम कोशिश करेंगे कि जो सही वोटर्स हैं, उनके नाम नहीं कटें।

16 फरवरी को विधानसभा सत्र शुरू हो रहा है। हम पूरे गुजरात से लोगों को बुलाकर गांधीनगर में इन्हीं सब मुद्दों पर रैली करेंगे। ■

> महिलाएं महंगाई से तो परेशान हैं ही, शराब और ड्रग्स की वजह से गुजरात का हर घर परेशान है। पुलिस और प्रशासन में बैठे लोगों को हर हफ्ते करोड़ों मिलते हैं। शराबबंदी के बावजूद गली-गली में अवैध शराब मिलती है

रेवड़ी मुफ्त के उपहारों पर बातें चाहे जितनी हो रही हों, तमिलनाडु में यह चलन बढ़ता ही जा रहा है

मुफ्त उपहारों के फंदे में उलझी राजनीति

तमिलनाडु में लोकलुभावनवाद राजनीति में इस तरह रच-बस गया है कि इससे छुटकारा पाना राजनीतिक आत्महत्या जैसा बन गया है

ए. शाजी

फिर विधानसभा चुनाव और फिर मुफ्त उपहार बांटने की वही स्क्रिप्ट। पूर्व मुख्यमंत्री और विपक्षी अन्नाद्रमुक के महासचिव ई.के. पलानीस्वामी ने पार्टी घोषणापत्र में इसकी 'पहली डोज' की घोषणा कीः राशन कार्ड रखने वाले परिवारों की मुखिया महिलाओं को हर महीने 2,000 रुपये और पुरुषों को मुफ्त बस यात्रा की सुविधा। तमिलनाडु के सत्ताधारी द्रमुक ने अन्नाद्रमुक पर उसकी नकल करने का आरोप लगाया, और संकेत दिया कि उसका घोषणापत्र इससे भी बढ़िया होगा।

तमिलनाडु में 'जनकल्याण राजनीति' समाज के लक्षित समुदाय को मदद करने की जगह सबसे बड़ा चुनावी मुद्दा बन गई है। अन्नाद्रमुक के दो ऐलानों से सरकारी खजाने पर सालाना करीब 40,000 करोड़ रुपये, यानी 2026-27 के लिए राज्य के अनुमानित राजस्व का करीब 11 फीसद, खर्च आने की उम्मीद है। केवल मुफ्त बस यात्रा से ही मौजूदा 3,600 करोड़ रुपये का सब्सिडी बिल दोगुना हो जाएगा।

मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज के पूर्व फैकल्टी सी. लक्ष्मणन कहते हैं, 'अब जनकल्याण का मूल अर्थ ही बदल चुका है। अब बजट चुनावी उपकरण बन गया है।' तमिलनाडु की कल्याणकारी संस्कृति की जड़ें द्रविड़ आंदोलन की सोच में हैं, जिसने सत्ता को सामाजिक बदलाव का एक सक्रिय माध्यम बनाया। सार्वजनिक शिक्षा का विस्तार, सरकारी नौकरी में आरक्षण की शुरुआत, और जन वितरण प्रणाली को मजबूत करना,... इन्हें सामाजिक न्याय के तरीकों के तौर पर देखा गया। मशहूर मिड-डे मील स्कीम, जिसे सबसे पहले अन्नाद्रमुक संस्थापक एम.जी. रामचंद्रन ने 1982 में शुरू किया था, से गरीब परिवारों के बच्चों का दाखिला काफी सुधरा।

80 के दशक के अंत और 90 के दशक के शुरू में जनकल्याण उपभोक्ता-आधारित कल्याण का रूप लेने लगा। लेकिन अहम मोड़ 2006 में आया, जब एम. करुणानिधि के नेतृत्व में द्रमुक सत्ता में लौटी। उनके घोषणापत्र में एक वादा ऐसा था जिसने चुनावी राजनीति का व्याकरण हमेशा के लिए बदल दियाः मुफ्त रंगीन टीवी। शुरू में गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को दिया गया और इसके पहले चरण पर करीब 3,600 करोड़ रुपये का खर्च आया। कुछ ही सालों में इसके दायरे में लगभग 45 लाख परिवारों को ले आया गया।

चेन्नई में रहने वाले राजनीतिक पर्यवेक्षक पी. एस. श्रीनिवासन कहते हैं, 'उस स्कीम ने सब बदल दिया। पार्टियों को एहसास हुआ कि घर के अंदर रखी कोई चीज कहीं ताकतवर होती है।' तभी से तमिलनाडु के घोषणापत्र शॉपिंग कैटलॉग जैसे लगने लगे। अगर करुणानिधि ने इसे बढ़ावा देने की शुरुआत की, तो जयललिता ने इसे नई ऊंचाई दी। 2011 में सत्ता में लौटने के बाद, उन्होंने एक ऐसा काम शुरू किया जो पहले कभी नहीं हुआ- मुफ्त मिक्सर ग्राइंडर, पंखे और मंगलसूत्र के लिए सोना; छात्रों के लिए मुफ्त लैपटॉप, यूनिफॉर्म, टेक्स्टबुक; ग्रामीण परिवारों के लिए बकरियां और गायें, और एक तय खपत सीमा तक मुफ्त बिजली। जयललिता के तरीके की खासियत सिर्फ वैरायटी नहीं बल्कि स्केल था। योग्यता पैमानों को हल्का कर दिया गया या पूरी तरह हटा दिया गया।

गांव के राजनीतिक व्यवहार पर बारीक नजर रखने वाले कोयंबटूर के सामाजिक पर्यवेक्षक के. मोहन राज कहते हैं, 'कल्याण ने मनोवैज्ञानिक सीमा पार कर ली। लोग स्कीमों को मदद नहीं बल्कि हक के तौर पर देखने लगे।'

2010 के दशक के मध्य तक, सवाल यह नहीं रह गया था कि सरकार को ऐसे उपहार देने चाहिए या नहीं, बल्कि यह था कि उपहार कैसे हों, कितने हों। यह ट्रेंड खास था क्योंकि एक समय दोनों ही द्रविड़ पार्टियों ने अलग-अलग समय पर वित्तीय अनुशासन और उदारीकरण वाले प्रयोग किए थे। वे बातें अब भुला दी गई हैं, लेकिन ये यह समझने की कुंजी हैं कि प्रतियोगी लोक-लुभावनवाद की जड़ें इतनी गहरी कैसे हो गईं।

1996 और 2001 के बीच, द्रमुक ने औद्योगिक बुनियादी ढांचा, सूचना प्रौद्योगिकी पार्क, शहरी नवीकरण परियोजना और सरकार-निजी भागीदारी पर ध्यान केन्द्रित किया। चेन्नई का मशहूर टीआईडीईएल पार्क राज्य की आईटी महत्वाकांक्षाओं का प्रतीक बना। तमिलनाडु को राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक आर्थिक उदारीकरण एजेंडे के साथ जोड़ने की कोशिश हुई।

अपने कार्यकाल (2002-2006) के दौरान जयललिता ने भी यही रास्ता अपनाया। उन्होंने घाटे में चल रही सार्वजनिक इकाइयों को बंद करने की पहल की, कुछ सेवाओं पर शुल्क लगाया, पीडीएस (सार्वजनिक वितरण प्रणाली) के चावल की सब्सिडी घटाई और पावर सेक्टर में निजी निवेश को आमंत्रित किया। दोनों प्रयोग राजनीतिक तौर पर आत्मघाती साबित हुए। द्रमुक 2001 का चुनाव हार गई तो जयललिता को 2006 में भारी हार का सामना करना पड़ा। संदेश साफ था। वित्तीय समझदारी और बाजार सुधार चुनावी फायदे में नहीं बदले।

लक्ष्मणन कहते हैं, 'उस चुनाव ने तमिलनाडु में सुधारवादी राजनीति को खत्म कर दिया। 2006 के बाद, हर पार्टी समझ गई कि आप यहां दक्षता या वित्तीय जिम्मेदारी की बात करके नहीं जीत सकते। आप लोकलुभावनवाद को नई ऊंचाइयां देकर और उसे दिखाकर ही जीत सकते हैं।'

उसके बाद किसी भी बड़ी पार्टी ने कभी भी सब्सिडी को तार्किक बनाने की गंभीर कोशिश नहीं की।

*

नई स्कीम में सबसे खास द्रमुक सरकार की महिलाओं के लिए फ्री सरकारी बस यात्रा स्कीम है, जिसे 2021 में शुरू किया गया था। हर महीने लगभग 4-5 करोड़ ट्रिप के साथ, अब सालाना खर्च 3,000 करोड़ से ज्यादा होने का अनुमान है।

पहले की फ्री स्कीमों के उलट, फ्री बस यात्रा से ऐसे सामाजिक नतीजे मिले जिन्हें मापा जा सकता है। स्टडी और ट्रांसपोर्ट डेटा बताते हैं कि महिलाओं का आना-जाना बढ़ा, खासकर कम आय वाले कामगारों, छात्रों और अनौपचारिक सेक्टर से जुड़ी आबादी में। इससे शिक्षा और रोजगार तक पहुंच बढ़ी।

श्रीनिवासन कहते हैं, 'यह ऐसी स्कीम है जिसका सीधा सामाजिक असर आप देख सकते हैं। खतरा यह है कि एक बार जब यह राजनीतिक रूप से स्वीकार्य हो जाएगी, तो कोई यह चर्चा भी नहीं करेगा कि इसे ठीक से कैसे फाइनेंस किया जाए।'

पुरुषों के लिए अन्नाद्रमुक के प्रस्ताव पर मोहन राज कहते हैं, 'यह पूरी तरह प्रतियोगी लोकलुभावनवाद है। एक पार्टी कुछ काम की चीज लाती है। दूसरी पार्टी सिर्फ उससे आगे निकलने के लिए उसे और बड़ा बना देती है। व्यवहारिकता का सवाल उठता ही नहीं।'

तेलंगाना, कर्नाटक और मध्य प्रदेश ने पहले ही किसानों और महिलाओं को लक्ष्य करके बड़े पैमाने पर कैश स्कीम को सामान्य बना दिया है। तमिलनाडु उसी ओर बढ़ रहा है। लक्ष्मणन कहते हैं, 'वित्तीय संदर्भों में यह बेहद खतरनाक है। एक बार जब आप सबको नकद देने लगते हैं, तो इसे रोकना लगभग नामुमकिन होता है।'

हर राशन कार्ड रखने वाले परिवार की मुखिया महिला को हर माह 2,000 रुपये देने के पलानीस्वामी के प्रस्ताव का वित्तीय असर बहुत बड़ा है। हर परिवार को साल में 24,000 रुपये के हिसाब से, 1.5 करोड़ राशन कार्ड का मतलब सालाना 36,000 करोड़ हुआ।

तमिलनाडु की लोकलुभावनवादी राजनीति बढ़ते वित्तीय तनाव की पृष्ठभूमि में जड़ें जमा रही है। 2024-25 के लिए राज्य की राजस्व आय करीब 2.5 लाख करोड़ है। इसका कुल कर्ज 8 लाख करोड़ को पार कर गया है। सालाना ब्याज ही 40,000 करोड़ है। सब्सिडी और वेलफेयर स्कीम पर पहले से ही सालाना 45,000 से 50,000 करोड़ खर्च आता है। अगर इसमें 40,000 करोड़ के नए वादे भी जोड़ दें, तो इंफ्रास्ट्रक्चर, शहरी विकास, उद्योग आदि पर होने वाला व्यय उसी अनुपात में घट जाएगा।

इन चिंताओं के बावजूद, कोई भी बड़ा राजनीतिक दल या गठजोड़ मुफ्त उपहारों के चलन को चुनौती देने को तैयार नहीं। कारण राजनीतिक संस्कृति से जुड़े हैं। वोटरों की उम्मीदें तीन दशकों के चलन से बनी हैं। पूरी पीढ़ियां मुफ्त चावल, शिक्षा, बिजली के साथ बड़ी हुईं स्कीमों को वापस लेने की किसी भी कोशिश को तुरंत गरीब-विरोधी या जन-विरोधी करार दिया जाएगा। बड़ी पार्टियों में विचारधारा का फर्क नहीं। मुकाबला है कि कौन ज्यादा देता है। मोहन राज कहते हैं, 'लोग पूछते हैं कि उन्हें क्या मिलेगा, न कि राज्य क्या खोएगा। पैसे के बारे में मुश्किल सवाल पूछने का कोई पॉलिटिकल इनाम नहीं।' सुप्रीम कोर्ट ने 2013 में इस चलन की आलोचना तो की, लेकिन रोक लगाने से मना करते हुए इसे वोटर की समझ पर छोड़ दिया। इससे प्रतियोगी लोकलुभावनवाद को वैधता मिली। चुनाव कार्यक्रम की घोषणा होते-होते और बड़े वादों, बड़ी स्कीमों का जाल फेंका जाएगा। मुफ्त उपहारों का फंदा और कसेगा। ■

> कोई भी दल या गठजोड़ मुफ्त उपहारों के चलन को चुनौती देने को तैयार नहीं। वोटरों की उम्मीदें तीन दशकों के चलन से बनी हैं। पूरी पीढ़ियां मुफ्त चावल, शिक्षा, बिजली के साथ बड़ी हुईं। स्कीमों को वापस लेने की किसी भी कोशिश को तुरंत गरीब-विरोधी या जन-विरोधी करार दिया जाएगा

गोरक्षा के नाम पर हत्या और वसूली का रैकेट?

एंटी-लिंचिंग कानून में 'लिंचिंग' शब्द है ही नहीं और यह गोरक्षा के नाम पर कानून हाथ में लेने वालों को छूट देने जैसा है

रश्मि सहगल

पिछले दस सालों में ऐसी घटनाओं में चिंताजनक बढ़ोतरी हुई है जब गौरक्षक समूह मुसलमानों को सबक सिखाने के लिए जबरदस्ती वसूली और ब्लैकमेल पर उतर आने के साथ-साथ कई बार उनकी हत्या भी कर देते हैं। ये स्वयंभू गौरक्षक न सिर्फ खौफ पैदा करते हैं, बल्कि वे अक्सर मुसलमानों की लिंचिंग के लिए भी जिम्मेदार होते हैं। चिंता की बात यह है कि उन्हें सजा नहीं मिलती और ये मुसलमानों के खिलाफ फर्जी केस बनाने के लिए इतना नीचे गिर जाते हैं।

2024 के शुरू में बजरंग दल के मुरादाबाद जिला अध्यक्ष मोनू बिश्नोई ने अपने साथियों रमन और राजीव चौधरी के साथ मिलकर शहाबुद्दीन नाम के एक व्यक्ति को बुर्का पहनाया ताकि मुल्ला मोहम्मद नाम के एक व्यक्ति को फांसा जा सके, जिससे बिश्नोई की दुश्मनी थी। शहाबुद्दीन ने बाद में पुलिस को बताया कि मुल्ला मोहम्मद को फंसाने के लिए उसे गाय चुराने और काटने के लिए 30,000 रुपये दिए गए थे। अपराध की जगह पर जानबूझकर एक बटुए में मोहम्मद की फोटो रखी गई थी। मुरादाबाद के एसएसपी हेमराज मीणा की अगुवाई में हुई जांच के बाद बिश्नोई, उसके साथियों और शहाबुद्दीन को गिरफ्तार किया गया। शहाबुद्दीन ने कबूल किया कि यह ग्रुप 16 से 28 जनवरी के बीच छजलेट थाने के इलाके में गोहत्या की कई घटनाओं को अंजाम देने में शामिल था। चारों पर आपराधिक षड्यंत्र (120बी) और गोहत्या कानून की धाराओं के तहत आरोप लगाए गए। अपराध के कुछ ही हफ्तों में चारों जमानत पर रिहा हो गए।

यह केस अहम है क्योंकि इससे पता चलता है कि कैसे गोरक्षा के नाम पर जबरदस्ती वसूली और ब्लैकमेल किया जाता है, और ज्यादातर मामलों में पुलिस मूकदर्शक बनी रहती है।

8 अप्रैल 2023 को, जितेंद्र कुशवाहा के नेतृत्व में बजरंग दल और हिन्दू महासभा के कार्यकर्ताओं ने आगरा में मोहम्मद रिजवान और उसके तीन बेटों के खिलाफ पुलिस में शिकायत दर्ज कराई। आरोप था कि उन्होंने गाय काटी थी। यहां भी, वजह निजी थी-स्थानीय नेता संजय जाट ने रिजवान के खिलाफ शिकायत की थी। रामनवमी से एक दिन पहले, सांप्रदायिक तनाव बढ़ाने के लिए पूरे शहर में प्रदर्शन किए गए। पुलिस जांच में पता चला कि रिजवान और उसके बेटे जुर्म की जगह के आस-पास भी नहीं थे। सभी आरोपी जमानत पर बाहर हैं। बजरंग दल नेता सूरज पटेल रामपुर के केमरी थाने के एसएचओ से नाराज था। 10 जनवरी 2026 को वह पुलिस स्टेशन में घुसा और पुलिस को उसे गिरफ्तार करने की चुनौती दी जो उन्होंने बेशक नहीं किया। यह पहली बार नहीं था जब उसने ऐसा गुस्सा निकाला हो।

हालांकि भारतीय न्याय संहिता के तहत नए एंटी-लिंचिंग नियम जुलाई 2024 में लागू हुए, लेकिन 'लिंचिंग' शब्द हटाने से पुलिस ऐसे मामलों को आमहत्या के आरोपों के तहत दर्ज कर सकती है। नए कानून का इस्तेमाल सिर्फ एक बार हुआ जब 23 अगस्त 2024 को फरीदाबाद में 19 साल के आर्यन मिश्रा को मवेशी तस्कर समझकर गौरक्षकों ने गोली मार दी थी। पुलिस को एंटी-लिंचिंग कानून का इस्तेमाल नेशनल मीडिया के दबाव के कारण करना पड़ा।

बजरंग दल के कार्यकर्ताओं को सजा मिलने के सही आंकड़े नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) जैसी केंद्रीय एजेंसियां नहीं रखतीं। वे 'लिंचिंग' को एक अलग जुर्म के तौर पर ट्रैक नहीं करतीं। कम सजा का नतीजा हमेशा जल्दी रिहाई होता है।

झारखंड में 2018 का रामगढ़ लिंचिंग केस इसलिए खास है क्योंकि इसमें भारत में गाय से जुड़ी लिंचिंग के लिए पहली बार सजा हुई थी। मजलूम अंसारी और बारह साल के इम्तियाज खान को फांसी देने के लिए बजरंग दल के 11 कार्यकर्ताओं और एक स्थानीय भाजपा नेता को उम्रकैद की सजा सुनाई गई थी। हमले के लिए जिम्मेदार भीड़ में बजरंग दल के कार्यकर्ता और एक लोकल भाजपा नेता शामिल थे।

हालांकि, ज्यादातर मामलों में पक्के सबूत होने पर भी हिन्दुत्व कार्यकर्ता बिना किसी कार्रवाई के बच निकलते हैं। मुरादाबाद के 37 साल के ठेला खींचने वाले शहीदीन कुरैशी की हत्या के बारे में सोचिए, जिन्हें 30 दिसंबर 2024 को राकेश सक्सेना की अगुवाई में बजरंग दल के लोगों ने गोहत्या के आरोप में मार डाला था। उन्होंने हमले का वीडियो बनाकर अपलोड कर दिया। जब वे गालियां दे रहे थे और कुरैशी को डंडों से पीट रहे थे, तो एक आवाज सुनाई दे रही थी, 'अरे, मर गया।' शहीदीन के भाई गुड्डू के मुताबिक, उसके शरीर का हर हिस्सा टूट गया था- कलाई, उंगलियां, पसलियां, खोपड़ी, कुछ भी सही-सलामत नहीं बचा था।

लेकिन बजरंग दल का इतना असर है कि हत्या के फौरन बाद पुलिस ने मुरादाबाद के 25 साल के अदनान को गिरफ्तार कर लिया। उस पर शहीदीन की हत्या का आरोप लगाया गया क्योंकि उसका शहीदीन की बीवी के साथ कथित तौर पर अफेयर था। हालांकि, अदनान के परिवार का कहना है कि पुलिस ने यह कहानी इसलिए बनाई कि मामला मॉब लिंचिंग के तौर पर दर्ज न करना पड़े।

जब लिंचिंग होती है, तो सरकार अक्सर अपराधियों के खिलाफ एफआईआर दर्ज करके नहीं, बल्कि पीड़ितों के खिलाफ मामले दर्ज करके जवाब देती है, खासकर गौरक्षा अधिनियम या मवेशी सुरक्षा कानूनों के तहत।

20 अक्तूबर 2024 को महाराष्ट्र के म्हसाने में गौरक्षकों के एक समूह ने दो मुस्लिम मवेशी व्यापारियों को पकड़ लिया। उनके कपड़े उतारकर उन्हें बुरी तरह पीटा गया और पुलिस के हवाले कर दिया गया। उनकी गाड़ी में तोड़-फोड़ की गई, और वे जो 52 मवेशी ले जा रहे थे, उन्हें जब्त करके स्थानीय गौशाला में भेज दिया गया।

ज्यादातर गौरक्षक समूह जबरन वसूली करने वाले रैकेट के तौर पर काम करते हैं। जो लोग पैसे देने से मना करते हैं, उन्हें मार दिया जाता है, अक्सर बड़े भयानक तरीके से। ऐसा ही एक शिकार अहमदाबाद के मिर्जापुर का 32 साल का मांस व्यापारी मोहम्मद भूरा हबीबुल्लाह था। गौरक्षकों ने 25,000 रुपये मांगे, जिसे उसने देने से मना कर दिया। पांच दिन बाद 21 अप्रैल 2025 को उसकी जली हुई लाश उसकी जली हुई गाड़ी में मिली। गांधीनगर पुलिस ने रैश ड्राइविंग और ओवरस्पीडिंग की रिपोर्ट दर्ज की, लेकिन पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में उसके शरीर पर खरोंच और खोपड़ी में फ्रैक्चर का पता चला। बुलंदशहर के एसएचओ सुबोध कुमार सिंह की हत्या बहुत कुछ कह जाती है। उन्हें 3 दिसंबर 2018 को गौरक्षकों ने मार डाला था। उनके बेटे श्रेय सिंह कुछ हफ्ते बाद अपने पिता का सामान लेने बुलंदशहर गए। इस पत्रकार के साथ एक खास इंटरव्यू में श्रेय ने कहा, 'चौकी के पास 400 लोगों की भीड़ जमा हो गई थी। लोग कुल्हाड़ी, चाकू और पत्थरों से लैस थे। मेरे पिता को पत्थरबाजी से 25 घाव लगे। उनकी पीठ पर चाकू का एक गहरा घाव था और उनके दाहिने हाथ पर कुल्हाड़ी से हमले के निशान थे। उनके दाहिने हाथ का अंगूठा काट दिया गया था ताकि वह आत्मरक्षा में रिवॉल्वर का इस्तेमाल न कर सकें।'

साफ है कि इन समूहों के पास न तो पैसे की कमी है और न ही जेल जाने का खौफ। सुबोध कुमार सिंह की हत्या के मुख्य आरोपी योगेश राज और उसके साथी जब सितंबर 2019 में जमानत पर रिहा हुए, तो उनका मालाओं से स्वागत किया गया और उन्हें लेकर जुलूस निकाला गया। योगेश राज ने इसके बाद निगम चुनाव लड़ा और जीता। अब वह राजनाति को कॅरियर बनाने की तैयारी कर रहा है।

जैसा कि भाजपा के एक वरिष्ठ नेता ने नाम न बताने की शर्त पर बताया, 'विहिप (बजरंग दल का पेरेंट ऑर्गनाइजेशन) के पास बहुत पैसा है और उसे इन विजिलेंट समूहों को फंड करने में कोई हिचकिचाहट नहीं। उन्हें फोन, कार और पैसे दिए जाते हैं। एजेंडा तेजी से आगे बढ़ रहा है।'

लखनऊ के एक सफल वकील, जो गोरक्षकों के केस मुफ्त में लड़ते हैं, ने सबके सामने शेखी बघारी है कि उन्हें इन विजिलेंट समूहों को उपलब्ध कराई गई सेवा के बदले अच्छा इनाम मिल रहा है। उन्हें हाईकोर्ट जज बनने के लिए चुना गया है और उम्मीद है कि यह घोषणा बहुत जल्द हो जाएगी। दूसरे वकीलों को भी ऐसे ही इनाम देने का वादा किया गया है।

अगर यह ट्रेंड बेरोक-टोक जारी रहा, तो यह न सिर्फ सांप्रदायिक बंटवारा और गहरा करेगा, बल्कि पूरे देश में कानून के राज को भी पूरी तरह कमजोर कर देगा। ■

विरोध भीड़ द्वारा पीट-पीटकर हत्या करने की बढ़ती घटनाओं के खिलाफ नई दिल्ली में प्रदर्शन

बजरंग दल के कार्यकर्ताओं को सजा मिलने के सही आंकड़े नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो जैसी सेंट्रल एजेंसियां नहीं रखतीं। ये 'लिंचिंग' को अलग जुर्म के तौर पर ट्रैक ही नहीं करतीं। चिंता की बात है कि ऐसे गोरक्षकों को सजा भी नहीं मिलती

सवाल जिंदगी और मौत का

महाराष्ट्र में खेती की दुश्वारियों से जूझ रहे लोगों में बढ़ता तनाव मानसिक बीमारी की शक्ल ले रहा। इसीलिए बढ़ रही आत्महत्याएं

जयदीप हार्दिकर

जैसे ही उसके मोबाइल की घंटी बजती है, 20 साल का किरीट भागकर डेस्कटॉप के सामने बैठ जाता है। हेडफोन लगाता है, पेन उठाकर डायरी खोल लेता है। शांत आवाज में कहता है- 'नमस्कार, शिवार हेल्पलाइन!' दूसरी तरफ पार्वती है, जो महाराष्ट्र के नांदेड़ के एक गांव की अधेड़ उम्र की किसान। किरीट मराठी में पूछता है- 'मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूं?'

पुणे में बीए साइकोलॉजी के तीसरे साल का छात्र किरीट परभणी के एक गांव का रहने वाला है। पार्वती हिचकिचाती है। कांपती आवाज में किसी तरह कहती है- 'बारिश ने फसलें बर्बाद कर दीं सोयाबीन, तुअर। बकरियां भी चली गईं। अब कोई काम नहीं।' फिर किरीट से कहती है, 'अगर बीज मिल गए, तो गर्मी तो काट ही लेंगे।' किरीट उसकी जरूरतें नोट करता है और कहता है कि वह उसकी जरूरतें हेल्पलाइन के हेड तक पहुंचा देगा। समझाता है- 'काही तरी होईल, काळजी करू नका' (कुछ तो जरूर होगा, आप चिंता न करें।)' पार्वती धन्यवाद देते हुए गुजारिश करती है: 'या बहिणी कड़े लक्षा थेवा, दादा (इस बहन का खयाल रखना, भाई)' बातचीत 10 मिनट चलती है। दोनों तरफ दर्द!

*

23 सितंबर से 23 अक्तूबर 2025 के बीच शिवार हेल्पलाइन के पास करीब 10,000 फोन आए। इतने लोगों को अटेंड करने के लिए और वॉलंटियर्स रखने पड़े। एक दिन तो 894 फोन आए जिनमें से कम-से-कम 180 लोग खुद को गंभीर नुकसान पहुंचाने के बारे में सोच रहे थे।

शिवार के 31 साल के संस्थापक और सीईओ विनायक हेगन्ना स्वीकार करते हैं- 'इतनी कॉल से हमारी व्यवस्था चरमरा गई।' एक प्रशिक्षित साइकोलॉजिस्ट और सोशल वर्कर होने के नाते, गांव की मुश्किलों पर उनकी नजर रहती है। 2023 के शेवनिंग फेलो हेगन्ना बताते हैं, 'इतनी संख्या में कॉल पूरे महाराष्ट्र में लोगों की बुरी हालत के बारे में बताती है। संकट की जड़ें बहुत गहरी हैं।'

लगभग तीन दशकों से महाराष्ट्र, खासकर विदर्भ और मराठवाड़ा इलाके, विकराल होते कृषि संकट से जूझ रहे हैं। इसका नतीजा है किसानों की आत्महत्या। जब से एनसीआरबी (नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो) ने रिकॉर्ड रखना शुरू किया है, 60 हजार से ज्यादा किसान खुदकुशी कर चुके हैं। 2025 की अचानक आई बाढ़ तो बस इस कड़ी का ताजा कारक है। हेगन्ना कहते हैं, 'जलवायु तबाही सिर्फ आर्थिक संकट नहीं, यह मानसिक स्वास्थ्य महामारी भी है।'

*

24 सितंबर 2025 को, 42 साल के लक्ष्मण गवसने ने पास के शहर से पत्नी शिवकन्या को आखिरी कॉल किया। वह किराने का सामान खरीदने गए थे। छोटे किसान होने के नाते वह मजदूरी से लेकर जो भी काम मिला, करते रहे। उनका सपना अपनी बेटी वैष्णवी (जो सोलापुर के बार्शी में फार्माकोलॉजी की पढ़ाई कर रही है) और बेटे शिवशंकर (जो धाराशिव में तकनीकी शिक्षा पा रहा है) को पढ़ाना था।

25 सितंबर को बारिश थमने का नाम नहीं ले रही थी। उसी दिन गवसने गन्ने के खेत में मृत मिले। वह स्थानीय नेताओं के नाम पत्र छोड़ गए थे जिसमें बच्चों की पढ़ाई पूरी करने में मदद की गुहार थी। जिस दिन गवसने की मौत हुई, स्थानीय अखबारों ने सुसाइड से चार और लोगों के मरने की खबर दी। 20-25 सितंबर के बीच, सोलापुर जिले में 365.8 मिलीमीटर बारिश हुई, मासिक औसत से 1,253 फीसद ज्यादा।

राज्य सरकार के अनुमान के मुताबिक, मराठवाड़ा के आठ जिलों में कुल बोए गए क्षेत्र का तिहाई हिस्सा, यानी 44 लाख हेक्टेयर से ज्यादा में खरीफ की फसलें खराब हो गईं। पूरे राज्य में, करीब 3,600 घर तबाह हुए; बाढ़ में 224 लोगों और 600 जानवरों की जान चली गई।

बाढ़ नदी किनारे के पेड़-पौधों को बहा ले जाती है, नदी के किनारों को खराब कर देती है और पीने के पानी के स्रोत को गंदा कर देती है। इससे ग्राउंडवॉटर रिचार्ज भी रुक जाता है। सामाजिक तौर पर, बाढ़ से गांव के लोग और दयनीय हो जाते हैं: फसल, जानवर, जमा अनाज और जरूरी कागजात खत्म हो जाते हैं। लोगों को कर्ज लेना पड़ता है और कहीं और पलायन करना पड़ता है।

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ एंड न्यूरो-साइंसेज (निमहान्स) में आपदा प्रबंधन में मनोवैज्ञानिक-सामाजिक सहायता विभाग के प्रमुख डॉ. सुभाशीष भद्र कहते हैं, 'सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक हालात आपदाओं के दौरान लोगों का मानसिक स्वास्थ्य तय करते हैं। लोग अचानक हुए सदमे से कितनी जल्दी उबरते हैं, यह इससे तय होता है कि सहायता व्यवस्था ने आपदा के दौरान और उसके बाद कैसा काम किया, कितनों को कितनी जल्दी इसका लाभ मिला।'

*

अक्तूबर 2025 में जलवायु विज्ञानियों, कृषि मौसम विज्ञानियों और सिविल सोसाइटी समूहों द्वारा तैयार श्वेत पत्र में कहा गया है कि मराठवाड़ा की बाढ़ और उससे पैदा हुआ मानसिक स्वास्थ्य संकट बारिश ही नहीं, व्यवस्था की नाकामी की वजह से हुआ। सितंबर में 305 मिलीमीटर बारिश रिकॉर्ड की गई, जो सामान्य से 204 फीसद ज्यादा है और बीड, परभणी, लातूर, हिंगोली और नांदेड़ जैसे जिलों के पिछले रिकॉर्ड टूट गए। जून-जुलाई में बारिश की कमी से मिट्टी पर दबाव पड़ा, इसके बाद अगस्त में अचानक पानी बढ़ने से तालाब भर गए, जबकि जमीन पानी सोख नहीं पाई।

रिपोर्ट कहती है कि मराठवाड़ा अब सदैव सूखा पीड़ित इलाका नहीं रहा, बल्कि यहां दोनों तरह की चरम स्थितियां रहती हैं- लंबे समय तक रहने वाला सूखा और बीच-बीच में मुसलाधार बारिश। नेशनल अलायंस ऑफ पीपल्स मूवमेंट्स (एनएपीएम) के जमीनी अध्ययन 'महापुर अहवल (बाढ़ रिपोर्ट, नवंबर 2025)' ने इन नतीजों को और पक्का किया। रिपोर्ट बताती है कि जब तक सुधार के उपाय नहीं किए जाएंगे, मराठवाड़ा एक ही मौसम में दो चरम मुश्किलों - सूखे और बाढ़ – के बीच झूलता रहेगा।

*

शिवार हेल्पलाइन पर, फोन का घनघनाना बंद नहीं हुआ। 31 दिनों तक हेगना घर नहीं गए। वह कहते हैं, 'युद्ध जैसी स्थिति' थी। हर कॉल करने वाला खुद को नुकसान पहुंचाने के कगार पर था। वह बताते हैं, 'हम किसी भी कॉल को मना नहीं कर सकते; इससे किसी की जान जा सकती थी। वह कहते हैं, "मैंने 10 सालों से दिवाली नहीं मनाई। अक्टूबर की उस एक रात, हमें रात 10 बजे से सुबह 6 बजे तक 47 फोन आए। हर कॉल करने वाले में सुसाइड का खयाल।' जब भी कोई कॉल आता है, वह खुद से कहते हैं, 'बस सुनो, लेक्चर मत पिलाओ, उनका हाथ थामो।'

एक भयानक जलवायु हादसे के बाद लोगों का मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य संभालना ही शायद सबसे बड़ा काम है। हेगन्ना ने कॉल करने वालों को लो, मॉडरेट और हाई-रिस्क में बांटने के लिए फार्मर्स डिस्ट्रेस कोशेंट इंडेक्स (एफडीक्यूआई) डिजाइन किया। हाई-रिस्क वालों को वह खुद देखते हैं और उनका फॉलो-अप करते रहते हैं।

जब से उन्होंने हेल्पलाइन शुरू की है, उनकी टीम ने ग्रामीण महाराष्ट्र के लोगों में कम-से-कम 27 कारण पाए हैं जिन्हें नीति निर्माता जमात में कम ही जानते हैं। वह कहते हैं, 'एक कारण खेत की सड़कों तक पहुंच को लेकर पड़ोसी के साथ झगड़ा है, जिसे जिला राजस्व अधिकारी आसानी से सुलझा सकते हैं।'

हेगन्ना दो कामों पर फोकस करते हैं: मानसिक स्वास्थ्य काउंसलिंग और गांव-स्तर पर दखल। कहते हैं, 'हमें उन तनावों पर काम करना होगा जो मानसिक स्वास्थ्य संकट को बढ़ाते हैं।'

हेल्पलाइन इस संदर्भ में पहली चुनौती का समाधान करती है: मानसिक स्वास्थ्य महामारी। जो तनाव लोगों को मानसिक समस्याओं के भंवर में धकेलते हैं, उन्हें दीर्घकालिक प्रयासों से ठीक करने की जरूरत है- जमीनी दखल से लेकर नीतिगत सुधार तक। हेगन्ना ने किसानों और युवाओं को एक साथ लाने और सकारात्मक हस्तक्षेप पर काम करने के लिए शिवार फाउंडेशन शुरू किया।

वह कहते हैं, 'उदाहरण के लिए, हमने धाराशिव (महाराष्ट्र के सबसे कम बारिश वाले इलाकों में एक) में विधवाओं को इकट्ठा किया। निजी और सरकारी क्षेत्र की सहायता से उनके लिए रोजी-रोटी का इंतजाम कर उनके वित्तीय तनाव को कम करना था।'

हेगन्ना का मकसद एक एग्री-साइको-सोशल मॉडल बनाना है। साथ ही, फाउंडेशन किसानों के लिए एक ऐसा मानसिक स्वास्थ्य सहायता मॉडल बनाने की कोशिश करेगा जो सुलभ और आसानी से दोहराया जाने वाला हो। वह जिला कलेक्टर समेत अन्य अधिकारियों से संपर्क करते हैं और किसानों को सरकारी मदद दिलाने में मदद करते हैं। कई अधिकारी मदद भी करते हैं। फिर भी, वह कहते हैं कि इतना काफी नहीं।

2023 से जैसे-जैसे मौसमी बदलाव बिगड़ता गया, हेगन्ना को लगा कि आने वाला संकट सूखे से कहीं ज्यादा मुश्किल होगा। 2025 में, एक नरमदिल दानदाता ने पुणे को एक केंद्रीकृत सिस्टम में बदलने में मदद की, जिसे पूरे महाराष्ट्र के लिए बढ़ाया जाएगा। फिर भी, जलवायु-नीति की प्रतिक्रियाओं में मानसिक स्वास्थ्य देखभाल नदारद है। हेगन्ना कहते हैं, 'मिट्टी शायद जल्दी ठीक न हो, लेकिन आप जिंदगी तो बचा सकते हैं और उन्हें फिर से संवार सकते हैं।' ■

सौजन्य: पीपल्स आर्काइव ऑफ रूरल इंडिया (पारी)

संकट और समाधान साल 2025 में हुई अभूतपूर्व बारिश महाराष्ट्र के किसानों के लिए बड़ा झटका साबित हुई। (इनसेट) शिवार हेल्पलाइन के सीईओ कोल्हापुर के किसान विनायक हेगन्ना

तीन दशकों से महाराष्ट्र, खासकर विदर्भ और मराठवाड़ा इलाके, विकराल होते कृषि संकट से जूझ रहे हैं। नतीजा है किसानों की आत्महत्या। जब से एनसीआरबी ने रिकॉर्ड रखना शुरू किया है, 60 हजार से ज्यादा किसान खुदकुशी कर चुके हैं

किताबी रणनीति और जिन रातों की भोर नहीं

नरवणे के 'अनछपे' संस्मरण पर हंगामे के बाद मामला और उलझा

ए.जे. प्रबल

रक्षामंत्री राजनाथ सिंह ने क्या राहुल गांधी को पूर्व सेनाध्यक्ष एम.एम. नरवणे की पुस्तक पर 'कारवां' पत्रिका में छपे एक लेख के जिक्र के साथ उसकी 'पांच लाइनें' पढ़ने से रोककर सेल्फ-गोल कर लिया? अगर सरकार 'फोर स्टार्स ऑफ डेस्टिनी' के तथ्यों को छिपाना चाहती थी, तो वह इससे बुरा कुछ भी नहीं कर सकती थी। विवाद के बाद से हजारों लोग इस 'अनछपी' किताब की पीडीएफ फाइल साझा कर चुके हैं।

9 फरवरी को पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया ने बयान जारी किया कि उस किताब का प्रकाशन अधिकार सिर्फ उसके पास है और 'किताब की कोई भी प्रति, चाहे प्रिंट हो या डिजिटल, पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया ने प्रकाशित, बांटी, बेची या किसी और तरह से जनता के लिए उपलब्ध नहीं कराई है'। रात दस बजे नरवणे ने इसे एक्स पर साझा किया।

10 फरवरी को राहुल गांधी किताब की हार्डबाउंड कॉपी लेकर संसद पहुंचे। शाम करीब 5 बजे, जनरल नरवणे ने प्रकाशक का बयान फिर पोस्ट किया, इस बार कमेंट के साथः 'यह है किताब की स्थिति'। 10 फरवरी को ही दिल्ली पुलिस की स्पेशल सेल ने किताब के गैर-कानूनी ऑनलाइन सर्कुलेशन के खिलाफ एफआईआर दर्ज की। पुलिस ने कहा, 'पता चला कि यही शीर्षक वाली और पेंगुइन की टाइपसेट किताब की पीडीएफ कुछ वेबसाइट पर उपलब्ध है और कुछ ऑनलाइन मार्केटिंग प्लेटफॉर्म ने तैयार किताब का कवर ऐसे दिखाया है जैसे वह खरीदने के लिए उपलब्ध हो।' मीडिया रिपोर्ट्स में कहा गया कि एफआईआर में कॉपीराइट एक्ट के अलावा आईटी एक्ट के उल्लंघन का आरोप है, जो बिना इजाजत संवेदनशील या अश्लील सामग्री का ऑनलाइन प्रसार रोकता है।

न सिर्फ भारतीय सेना के हर दूसरे ऑफिसर को वाट्सएप फॉरवर्ड के जरिये इसकी कॉपी मिल चुकी है, बल्कि अब तक तो विदेश भी पहुंच गई होगी। इससे हुए नुकसान के लिए प्रकाशक को जिम्मेदार लोगों पर केस करने और मुआवजा मांगने का हक है। हालांकि, इतने सारे 'गुनहगारों' पर केस करना और बकाया वसूलना लगभग नामुमकिन है।

नरवणे ने पहले जो दो पोस्ट किए थे, वे 'अनछपे संस्मरण के रहस्य' को और बढ़ाते हैं। एक दिसंबर 2023 का है। इसमें नरवणे ने अमेजॉन पर लिस्टेड किताब के प्रचार विवरण, जैकेट कवर, और आईएसबीएन नंबर पोस्ट किए थे, और कैप्शन थाः 'किताब अब उपलब्ध है'। उसके बाद के एक अन्य पोस्ट में, जिसकी 'संडे नवजीवन' ने अलग से पड़ताल नहीं की, वह प्रकाशक के एक पोस्ट का जवाब देते लग रहे थे, जिसमें लिखा था, 'प्रतिक्रिया दिल छू लेने वाली है'। दोनों पोस्ट से संकेत मिलता है कि किताब प्रिंट हो चुकी थी और वितरण के लिए उपलब्ध थी।

इस विवाद पर एक ऑनलाइन रिपोर्ट में, 'इंडिया टुडे' ने दावा किया कि उसने पड़ताल की है कि 'फोर स्टार्स ऑफ डेस्टिनी' की प्रतियां सच में वितरक और बुकस्टोर तक पहुंच गई थीं। हालांकि रिपोर्ट कुछ ही घंटों में हटा दी गई। क्या प्रकाशक रक्षा मंत्रालय से हरी झंडी मिले बिना हार्डबाउंड किताब में पैसा लगाने का जोखिम उठाते? कई इंटरव्यू में जनरल नरवणे ने कहा कि प्रकाशक ने इसे मंजूरी के लिए भेजा था।

इस विवाद ने ठीक वही किया जिससे सरकार बचना चाहती थी: किताब के बारे में लोगों में उत्सुकता बढ़ी, किताब की पीडीएफ को बड़े पैमाने पर साझा किया गया और चीन का मुकाबला करने में भारत की कथित डरपोक हरकत पर तीखी बहस शुरू हो गई

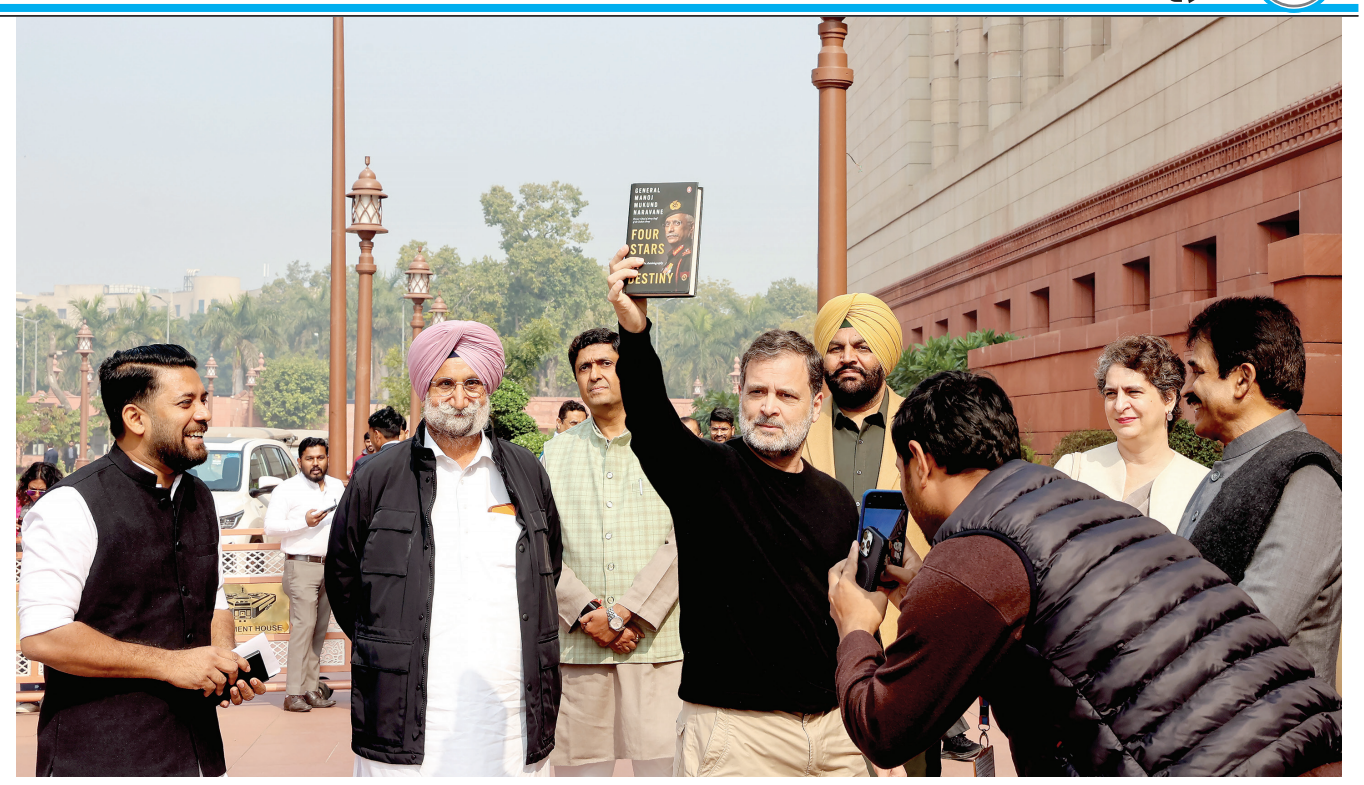

चुनौती संसद भवन परिसर में नरवणे की 'अनछपी' किताब की प्रति दिखाकर नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी ने सरकार को घुटनों पर ला दिया

खास बात यह है कि रक्षा मंत्रालय ने दिसंबर 2023 में न्यूज एजेंसी पीटीआई द्वारा जारी सारांश पर कोई आपत्ति नहीं जताई थी। न ही मंत्रालय ने लेखक या प्रकाशक से कम से कम 2 फरवरी 2026 तक कहा कि मंजूरी नहीं दी गई है।

*

सरकार ने अब तक न तो किताब पर रोक लगाई है और न सरकारी गोपनीयता अधिनियम लागू किया है। न रक्षामंत्री और न उनके मंत्रालय ने बताया है कि किताब में 'तथ्यों से जुड़ी गलतियां' क्या हैं या इन कथित गलतियों पर संसद में चर्चा क्यों नहीं होनी चाहिए।

उन गलतियों को बताना और पांडुलिपि को सुधार के लिए प्रकाशक को वापस करना एक आसान काम होना चाहिए था। मंत्रालय ने 2024 के बाद पूर्व सैन्य अधिकारियों की 34 किताबों को मंजूरी दी- अक्सर लेखकों और प्रकाशक से बातचीत करके संपादकीय बदलावों के बाद। पता नहीं, नरवणे की किताब 2023 से क्यों लटकी हुई है।

किताब पढ़ने वाले आर्मी वेटरन्स का मानना है कि यह किताब मौजूदा राजनीतिक नेतृत्व की बहुत तारीफ करती है। यहां तक कि 'कारवां' (फरवरी 2026) में भी लिखा है कि जनरल नरवणे ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की दिल खोलकर तारीफ की है। फिर मंजूरी क्यों नहीं दी गई? क्या पीएम के अलावा दूसरे लोग नाराज हो गए?

वेटरन्स कुछ ऐसे संदर्भ बताते हैं जो शायद राजनीतिक व्यवस्था को रास नहीं आए हों। सेना प्रमुख बनने के बाद मानेकशॉ सेंटर में मीडिया से पहली बातचीत में नरवणे ने कहा था कि सेना की वफादारी भारत के संविधान के प्रति है। यह इस भावना को दूर करने के लिए था कि सेना का राजनीतिकरण किया जा रहा है।

अपनी किताब में उन्होंने लद्दाख में स्थानीय कमांडरों की कम तैयारी और खराब कम्युनिकेशन के लिए भी खिंचाई की। वह बताते हैं कि 15-16 जून 2020 को गलवान में हुई झड़प (जिसमें 20 भारतीय सैनिक शहीद हुए) से पूरे एक महीने पहले चीनी सैनिकों ने भारतीय इलाके में टेंट लगाए थे। कमांडरों ने इसे गंभीरता से नहीं लिया, उन्हें लगा कि जैसे बर्फ पिघलेगी और पानी का स्तर बढ़ेगा, टेंट डूब जाएंगे। नरवणे ने विदेश मंत्रालय की भी आलोचना की कि उसने लद्दाख में चीनियों के साथ बातचीत कर रहे आर्मी कमांडरों को मीटिंग के मिनट्स रखने की इजाजत नहीं दी। इससे ऐसी गलतफहमियां हुईं जिनसे बचा जा सकता था, क्योंकि चीनी अक्सर भारत की 'विचार करने की सहमति' को सहमति मान लेते थे।

रणनीतिक मामलों के विश्लेषक सुशांत सिंह ने अपने लेख में प्रधानमंत्री, रक्षामंत्री और राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार के सेना प्रमुख पर दारोमदार छोड़ने की कड़ी आलोचना की। एक तनाव वाले वक्त जब चीनी टैंक बढ़ते आ रहे थे, जनरल नरवणे से कहा गया कि उन्हें जो ठीक लगे, करें। कुछ वेटरन का मानना है कि इस निर्देश ने सेना प्रमुख को पूरी छूट दे दी थी। हालांकि, सिंह बताते हैं कि कैबिनेट कमिटी ऑन सिक्योरिटी (सीसीएस) ने सेना प्रमुख को बिना ऊपर से मंजूरी के एलएसी पर गोली चलाने से मना किया था।

पुस्तक में नरवणे लिखते हैं, 'पाकिस्तान के साथ नियंत्रण रेखा पर तोपों की लड़ाई आम बात थी। डिविजनल और कोर कमांडरों को दिए अधिकार के अनुसार अगर स्थिति ऐसी हो तो वे कमान श्रृंखला में किसी भी ऊंचे अधिकारी से पूछे बिना तोपखाने के इस्तेमाल को आजाद हैं। लेकिन यहां बात अलग थी। मेरी स्थिति गंभीर थी, मैं कमांड और सीसीएस के बीच फंसा था। कमांड सभी संभव साधनों से गोलीबारी शुरू करना चाहता था और सीसीएस ने मुझे स्पष्ट आदेश नहीं दिया था।'

'अनछपी' किताब का एक और हिस्सा, जिसे कई सूत्रों ने उद्धृत किया है, कहता हैः 'हम हर तरह से तैयार थे, लेकिन क्या मैं सच में जंग शुरू करना चाहता था? देश बुरी हालत में था, कोविड महामारी से जूझ रहा था। अर्थव्यवस्था लड़खड़ा रही थी, वैश्विक सप्लाई चेन टूट गई थी। ऐसे में क्या हम लंबे समय तक स्पेयर पार्ट्स वगैरह की लगातार सप्लाई पक्का कर पाएंगे? विश्व स्तर पर हमारे समर्थक कौन थे, और फिर चीन और पाकिस्तान से एकजुट खतरे का क्या?'

जैसा कि सिंह अपने लेख में कहते हैं, जंग शुरू करने का फैसला सेना नहीं लेती। यह राजनीतिक नेतृत्व और सीसीएस का काम है, जो साफ पीछे हट गए, और दारोमदार सेना प्रमुख पर डाल दिया।

क्या यह किताब को रोकने के लिए काफी है? क्या सरकार ने किताब को प्रकाशित न होने देकर कोई गलती की? क्या विपक्ष के नेता को किताब से कोट करने से रोकना एक सियासी गलती थी?

इस विवाद ने ठीक वही कर दिया जिससे सरकार बचना चाहती थी। इसने किताब के बारे में लोगों की उत्सुकता बढ़ा दी और चीन का मुकाबला करने में भारत की कथित डरपोक हरकत पर तीखी बहस शुरू कर दी। 18 जून 2020 को मोदी ने ऑल-पार्टी मीटिंग में कहा था, 'ना कोई घुसा था, ना कोई घुसा है'। नरवणे की किताब में इस पर भी सवाल उठाया गया है। क्या यही वजह है कि इसे प्रकाशित करने की मंजूरी नहीं दी गई? ■

स्पीकर सर, आप अपने पद का मान रखिए

बिरला अपने फैसलों और कार्यशैली से जो उदाहरण बना रहे, वे लोकतंत्र के लिए गंभीर अंदेशे पैदा कर रहे

कृष्ण प्रताप सिंह

देश की पहली लोकसभा 1952 में गठित हुई तो गणेश वासुदेव मावलंकर उसके अध्यक्ष चुने गये। अनेक लोग जहां जी.वी. मावलंकर का आदर करते हुए उन्हें 'दादा साहब' कहते थे, वहीं प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू 'लोकसभा का जनक'। निस्संदेह, वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से थे और उनका उससे स्वाभाविक लगाव था। लेकिन मजाल क्या कि उन्होंने कभी इस लगाव को लोकसभा अध्यक्ष के आसन से किए जाने वाले अपने फैसलों, दी जाने वाली व्यवस्थाओं या कार्यवाही के संचालन के नियमों के आड़े आने दिया हो। इसलिए 27 फरवरी 1956 को हमने उन्हें खोया तो वे भारतीय संसदीय प्रणाली में ईमानदारी और उच्च नैतिक मानकों की नींव रखने वाले नायक के तौर पर जाने जाने लगे थे।

उनका मानना था कि अध्यक्ष के रूप में लोकसभा के सभी सदस्यों के लिए, वे सत्ता पक्ष के हों या विपक्ष के, समान न्याय का पैमाना अपनाना उनका सबसे पवित्र कर्तव्य है। हां, एक बार उनको लगा कि नेहरू सरकार की बार-बार अध्यादेश जारी करने की प्रवृत्ति देश की संसदीय प्रणाली और लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है तो उन्होंने उसका कतई कोई लिहाज न करते हुए नेहरू को पत्र लिखकर यह तक लिखने से गुरेज नहीं किया था कि केवल समय की कमी के कारण अध्यादेश लाना एक गलत परंपरा है और संसद को केवल 'रबर स्टैम्प' नहीं बनाया जाना चाहिए।

इतना ही नहीं, संसदीय संप्रभुता बनाए रखने की अपनी नैतिक प्रतिबद्धता के तहत उन्होंने लोकसभा के लिए एक स्वतंत्र सचिवालय की स्थापना पर जोर दिया था। यह और बात है कि 18 दिसंबर 1954 को तत्कालीन विपक्ष उनके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव ले आया था, जिसे 'तुच्छ' और 'विद्वेषपूर्ण' बताने के बावजूद पं. नेहरू ने उस पर बहस में विपक्ष के नेताओं को ज्यादा समय देने की वकालत की थी।

थोड़ा पीछे मुड़कर आजादी से पहले के दौर में देखें तो राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन 31 जुलाई 1937 को निर्विरोध संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) विधानसभा के पहले अध्यक्ष चुने गए तो 1946 - 1950 के दौरान भी इस पद पर रहे थे। उनकी निष्पक्षता और तटस्थता कैसी थी, इसे ऐसा समझा जा सकता है कि जब विपक्ष ने अध्यक्ष होने के बावजूद उनके भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बैठकों में भाग लेने को लेकर सवाल उठाए तो उन्होंने सदन के पटल पर घोषणा भी कर दी कि जिस दिन सदन का एक भी सदस्य उनके निर्णय या उनकी निष्पक्षता में अविश्वास व्यक्त करेगा, वे अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे देंगे। इसके बाद किसी विधायक ने इस मुद्दे को नहीं उठाया। अडिग कार्यशैली और सिद्धांतों के प्रति समर्पण के कारण उनको 'राजर्षि' की उपाधि दी गई, सो अलग।

इस प्रसंग में 1967-69 के बीच बिहार विधानसभा के अध्यक्ष रहे धनिकलाल मंडल का जिक्र न करना अनैतिक होगा। वे विधानसभा के अध्यक्ष थे तो बिहार में राजनीतिक अस्थिरता अपने चरम पर थी। महामाया प्रसाद सिन्हा के नेतृत्व में बनी और बेहद नाजुक संतुलन पर टिकी राज्य की पहली गैर-कांग्रेसी संयुक्त विधायक दल सरकार जनवरी 1968 में उठा-पटक और पाला बदल के खेल के बीच तब गहरे राजनीतिक संकट में पड़ गई, जब उसका विपक्ष के अविश्वास प्रस्ताव से सामना हुआ।

सिन्हा बहुमत का जुगाड़ नहीं कर पाए तो गुपचुप ढंग से मंडल से गुहार लगाने उनके आवास पर जा पहुंचे। उन्होंने उनसे निवेदन किया कि वे विधानसभा अध्यक्ष के रूप में अपनी शक्तियों का प्रयोग करके अविश्वास प्रस्ताव पर विचार की तारीख थोड़ी आगे बढ़ा दें। इस बीच वे अपनी सरकार के लिए वह बहुमत जो अभी उनके पास नहीं है, जुटा लेंगे।

लेकिन मंडल का दो टूक जवाब था कि अब तो उन्होंने उनके, यानी विधानसभा अध्यक्ष के सामने स्वीकार भी कर लिया है कि उनके पास बहुमत नहीं है, ऐसे में बेहतर होगा कि अब वे राज्यपाल के पास जाएं और उनको अपना इस्तीफा दे दें। लेकिन सिन्हा ने ऐसा नहीं किया और उनकी सरकार 28 जनवरी 1968 को अविश्वास प्रस्ताव की मार्फत बाहर हुई।

यहां लोकसभा और विधानसभाओं के इन अध्यक्षों द्वारा सदनों में अपनी कार्यशैली को पाक-साफ रखकर जतन से बनाए गए लोकतांत्रिक शुचिता, ईमानदारी और नैतिकता के इन उदाहरणों का जिक्र इसलिए जरूरी लगा कि वर्तमान लोकसभाध्यक्ष ओम बिरला अपने फैसलों और कार्यशैली से जो उदाहरण बना रहे हैं, वे इनके साफ विलोम नजर आ रहे और लोकतंत्र के लिए गंभीर अंदेशे पैदा कर रहे हैं।

याद कीजिए, लोकसभा के एक पूर्व सत्र में विपक्ष के नेता राहुल गांधी ने कहा था कि वे (लोकसभाध्यक्ष) प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी से हाथ मिलाते हैं तो बिछ-बिछ जाते हैं और मुझ (विपक्ष के नेता) से मिलाते हैं तो तने रहते हैं। सत्तापक्ष और विपक्ष में इस भेदभाव की इंतिहा यह कि कई बार वे परस्परविरोधी व्यवस्थाएं तक दे डालते हैं। लोकसभा के इन दिनों चल रहे बजट सत्र में भी उन्होंने कुछ ऐसा ही किया।

राहुल गांधी राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव पर बोलने खड़े हुए तो उनको देश की सुरक्षा के सिलसिले में भूतपूर्व थलसेनाध्यक्ष जनरल मनोज मुकुंद नरवणे की पुस्तक 'फोर स्टार्स आफ डेस्टिनी' का जिक्र करने और उसका वह उद्धरण (जिससे पता चलता है कि 2020 में सीमा पर चीन की आक्रामकता के समय किस तरह रक्षा मंत्री से लेकर प्रधानमंत्री तक ने नरवणे को यथासमय उपयुक्त आदेश नहीं दिया) पढ़ने से यह कहकर रोक दिया कि वे राष्ट्रपति के अभिभाषण पर बोलें। उन्होंने राहुल के इस सीधे सादे तर्क को भी नकार दिया कि देश की सुरक्षा का इतना महत्त्वपूर्ण मुद्दा अभिभाषण से अलग नहीं हो सकता और ऐसा करते हुए वे लोकसभा के एक पूर्ववर्ती सत्र में अपने ही द्वारा दी गई उस व्यवस्था को भूल गए कि राष्ट्रपति के अभिभाषण के लिए धन्यवाद के प्रस्ताव पर चर्चा में सदस्य उन विषयों पर भी बोल सकते हैं, जिनका अभिभाषण में जिक्र नहीं हो और जिसे वे उसमें जुड़वाना चाहते हों।

उनके दोहरे मापदंड की एक और बड़ी मिसाल तब भी सामने आई जब राहुल को तो नरवणे की पुस्तक से उद्धरण देने से रोका गया, लेकिन भाजपा सांसद निशिकांत दुबे को पं. नेहरू और गांधी परिवार को अकारण लांछित करने के लिए पुस्तकों के उल्लेख की खुली छूट दे दी गई। यही नहीं, प्रधानमंत्री मोदी के अभिभाषण के लिए धन्यवाद के प्रस्ताव पर चर्चा का उत्तर देने के लिए लोकसभा न आने के अगले दिन उनका कवच बनते हुए उन्होंने कह डाला कि मैंने ही प्रधानमंत्री से सदन में न आने का आग्रह किया था, क्योंकि उनके साथ कोई 'अप्रत्याशित घटना' हो सकती थी।

उनके इस कथन से जुड़े कई सवालों के जवाब अभी तक नदारद हैं। मिसाल के तौर पर यह कि उनको किस एजेंसी से और कैसे इसकी जानकारी मिली और मिलने के बाद उन्होंने क्या कदम उठाए? क्या उसकी जांच के लिए उन्होंने कोई एफआईआर दर्ज कराई और नहीं कराई तो क्यों? क्यों सदन में प्रधानमंत्री के साथ किसी अनहोनी के अंदेशे से अवगत होने और उनको आने से रोकने के बाद भी वे उसे ऐसे चलाते रहे जैसे कुछ हुआ हुआ ही न हो! फिर उनका काम सदन को इतना व्यवस्थित रखना था, जिससे प्रधानमंत्री चर्चा का जवाब दे सकें या उन्हें उसमें आने से ही रोक देना? ऐसे में, जैसा कि विपक्ष ने कहा है, अगर यह उनके द्वारा प्रधानमंत्री को विपक्ष के तीखे सवालों से बचाने का हथकंडा था, तो इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि उनकी सारी की सारी शुभकामनाएं सत्तापक्ष के साथ हैं। विपक्ष के नेताओं को अलानाहक रोकने-टोकने की कई मिसालें हैं। 24 जुलाई 2024 को बजट पर चर्चा के दौरान तृणमूल कांग्रेस के सांसद अभिषेक बनर्जी ने नोटबंदी का जिक्र कर दिया। इस पर बिरला ने कहा कि नोटबंदी तो पुरानी बात हो गई, बजट पर बोलिए। बनर्जी ने पलट कर पूछ लिया कि जब सत्ता पक्ष पचास साल पहले लगी इमर्जेंसी का जिक्र करता है और उससे भी पहले जाकर नेहरू की आलोचना करता है तो आप कुछ नहीं बोलते और मैं नोटबंदी का जिक्र करता हूं तो इस तर्क पर कि उसके बाद तो दो लोकसभा चुनाव हो चुके, आप कहते हैं कि बजट पर बोलिए। इसी सिलसिले में उन्होंने आगे कहा कि यह पक्षपात नहीं चलेगा सर, आप अपने पद का मान रखिए। लेकिन बिरला ने यह मान इस तरह रखा है कि उनके अब तक के कार्यकाल को खासतौर पर इस बात के लिए जाना जाता है कि उसमें रिकॉर्ड संख्या में विपक्षी सांसदों को निलंबित किया गया है।

ऐसे में अभिषेक बनर्जी द्वारा 24 जुलाई 2024 को उनसे कहे गए वे शब्द फिर से दोहराने की जरूरत महसूस होती हैः स्पीकर सर, आप अपने पद का मान रखिए। ■

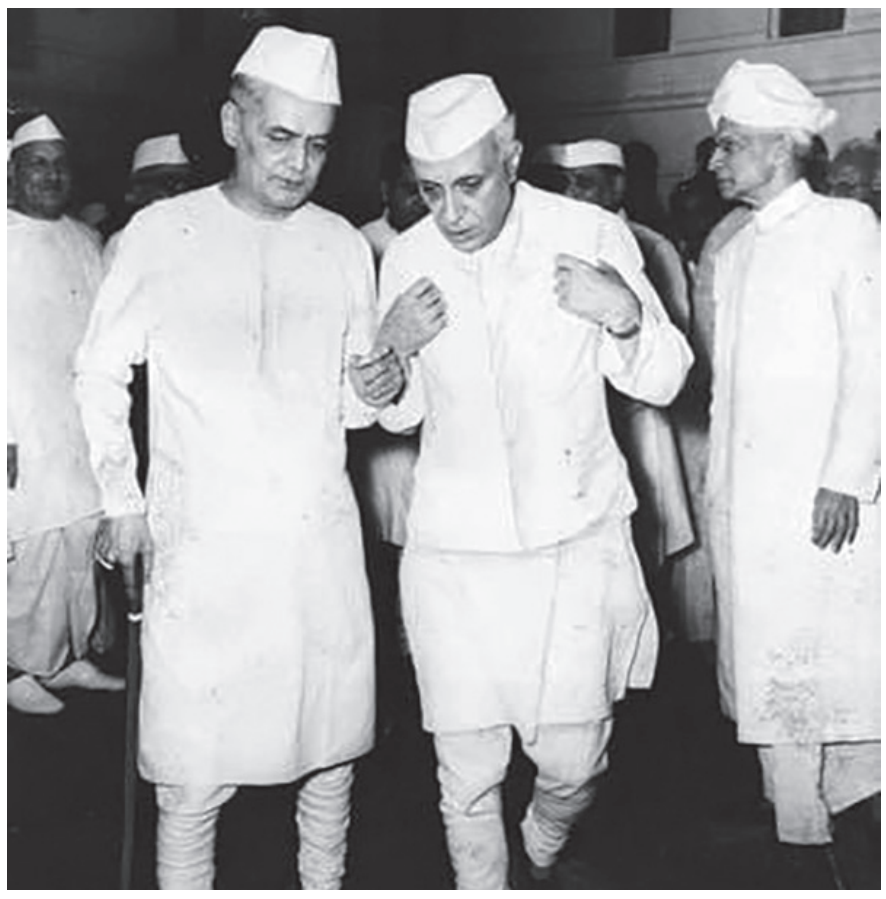

बेमिसाल पहली लोकसभा के अध्यक्ष जीवी मावलंकर (बाएं) ने प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के साथ संसदीय संप्रभुता की बड़ी लकीर खींची थी

बिरला ने कहा कि मैंने ही प्रधानमंत्री से सदन में न आने का आग्रह किया था, क्योंकि उनके साथ कोई 'अप्रत्याशित घटना' हो सकती थी। ऐसे में इन सवालों के जवाब नदारद हैं कि जानकारी मिलने के बाद उन्होंने क्या कदम उठाए? क्या जांच के लिए उन्होंने कोई एफआईआर दर्ज कराई?

राष्ट्रवाद का मिथक और दबाव में घुटने टेकना

अमेरिका ने भारत को अपनी विदेश और ऊर्जा नीति बदलने के लिए मजबूर किया, जो आत्मसमर्पण के समान है

आकार पटेल

संप्रभुता के उल्लंघन को किसी राष्ट्र की क्षेत्रीय अखंडता का उल्लंघन या सरकारी कामों में दखल के रूप में परिभाषित किया गया है। बांह मरोड़ना यानी दबाव डालना मतलब किसी को ऐसा काम करने के लिए मजबूर करना जो वह नहीं करना चाहता। समर्पण तब होता है जब कोई विरोध करना बंद कर देता है और दूसरे पक्ष की मनमानी को मान लेता है।

अमेरिका और भारत के बीच जो हुआ है, वह स्पष्टता और समझ का एक मॉडल है। इसे समझने के लिए जारी हुए बयानों को पढ़ने के अलावा और कुछ करने की जरूरत नहीं है।

अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप 6 अगस्त 2025 को जारी अपने एग्जीक्यूटिव ऑर्डर 14329 में लिखते हैं: "मैंने तय किया कि भारत से आने वाली चीजों के इंपोर्ट पर 25 प्रतिशत की अतिरिक्त एड वैलोरम ड्यूटी लगाना जरूरी और सही था, क्योंकि उस समय भारत सीधे या परोक्ष रूप से रूस से तेल खरीद रहा था।"

अब, 6 फरवरी 2026 को उनके एग्जीक्यूटिव ऑर्डर में बताया गया है: "खास तौर पर, भारत ने सीधे या परोक्ष तरीके से रूस से तेल इंपोर्ट बंद करने का वादा किया है, उसने कहा है कि वह अमेरिका के ऊर्जा उत्पाद (तेल, गैस आदि) खरीदेगा, और हाल ही में उसने अगले 10 सालों में रक्षा सहयोग बढ़ाने के लिए अमेरिका के साथ एक फ्रेमवर्क पर सहमति जताई है।"

चूंकि भारत अब वैसे ही व्यवहार कर रहा है जैसा अमेरिका चाहता है, तो ट्रंप ने कहा: "इसलिए, मैंने भारत पर लगाए गए एड वैलोरम ड्यूटी (अतिरिक्त टैरिफ) की अतिरिक्त दर को खत्म करने का फैसला किया है।"

भारत पर लगाया गया यह अतिरिक्त शुल्क अच्छे बर्ताव के लिए, या ज्यादा कूटनीतिक तरीके से कहें, तो बात मानने के लिए हटा दिया गया है। हालांकि, ट्रंप ने हमें चेतावनी दी है कि अमेरिका "इस बात पर नजर रखेगा कि भारत सीधे या परोक्ष से रूस से तेल इंपोर्ट करना फिर से शुरू करता है या नहीं" और अगर ऐसा होता है: "तो मैं भारत से आने वाली चीजों पर 25 फीसद का अतिरिक्त टैरिफ फिर से लगा दूंगा।"

सिर्फ इतनी ही बात नहीं है। समर्पण करने या हथियार डाल देने वाले देश को और भी बहुत कुछ करना होता है। भारत की तरफ से जारी बयान में कहा गया है कि: "भारत अगले पांच सालों में अमेरिका से 500 अरब डॉलर के उत्पाद खरीदने का इरादा रखता है।" यानी हर साल 100 अरब डॉलर की खरीदारी। 2024 में यह 40 अरब डॉलर था। भारत ने अमेरिका से पहले के मुकाबले दोगुने से ज्यादा उत्पाद खरीदने का वादा किया है।

इसके बदले में हमें क्या मिला? कम किया गया 18 प्रतिशत का 'कम' टैरिफ, जहां पहले कोई टैरिफ नहीं था। यही हमारा इनाम है। क्या यह संप्रभुता का उल्लंघन है? हां। बांह मरोड़ी गई है, यानी दबाव डाला गया? हां। आत्मसमर्पण। दुर्भाग्य से, हां।

जैसा कि मैंने कहा, यह समझौता स्पष्टता का एक मॉडल है। जयशंकर और भारत सरकार क्या कहती है, यह सुनने की जरूरत नहीं है; बस हमने जिस दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए हैं, उसे पढ़ने की जरूरत है।

सवाल यह है कि हमने सरेंडर क्यों किया। मेरे दोस्त अर्थशास्त्री अशोक बर्धन ने डील साइन होने से पहले एक मैसेज भेजा था, जिसमें उन्होंने अंदाजा लगाया था कि क्या होगा और उसे समझाने की कोशिश की थी।

उन्होंने लिखा था कि भारतीय पक्ष के झुकने के दो कारण हैं: "पहला, इस सरकार और इसके सपोर्ट बेस की तथाकथित राष्ट्रवादी साख को बहुत ज्यादा बढ़ा-चढ़ाकर बताया जाता है। राष्ट्रवादी कार्ड लेन-देन वाला है और ज्यादातर घरेलू कामों के लिए है, जिसे चुनावों के समय निकाला जाता है और पाकिस्तान का डर दिखाकर बेस को जोश दिलाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन जब बड़े लोगों से डील करने की बात आती है, तो इसका सहारा नहीं लिया जाता। कृषि क्षेत्र में दी गई रियायतों पर हैरान करने वाली प्रतिक्रिया भी इस सच्चाई को नजरअंदाज करती है कि, सबसे बढ़कर, सत्ताधारी पार्टी शहरी एलीट लोगों की पार्टी है, भले ही वे किसानों के हितों को अपनी योजनाओं में सबसे ऊपर रखने की बात क्यों न करें।"

इसके अलावा, भारत की अर्थव्यवस्था के कुछ डायनामिक सेक्टर्स में से जो दो सबसे बड़ी भूमिका निभाते हैं, वे हैं टेक्नोलॉजी सेक्टर और फाइनेंस, और "ये दोनों अमेरिकी बाजार से बहुत गहराई से जुड़े हुए हैं और अमेरिकी फर्मों और फंडिंग से लिंकेज पर बहुत ज्यादा निर्भर हैं।"

भारत के इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी से जुड़े सेक्टर्स के कुल आउटपुट का लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा अमेरिका को निर्यात किया जाता है। भारत ने 2024 में अमेरिका को लगभग 40 अरब डॉलर की सेवाएं बेचीं। और अमेरिका अपने हेज फंड, पेंशन फंड और म्यूचुअल फंड के जरिये भारत में पोर्टफोलियो इन्वेस्टमेंट का मुख्य सोर्स है। बर्धन कहते हैं, "भारतीय फाइनेंशियल मार्केट का लगभग हर पहलू और स्ट्रक्चर मुख्य रूप से अमेरिका से जुड़ा हुआ है, वेंचर फंडिंग, फाइनेंशियल रिसर्च से लेकर फाइनेंशियल न्यूज आउटलेट्स और उससे आगे तक।"

तो यह है सच। हमारा राष्ट्रवाद, हमारी बहादुरी, हमारा 56 इंच का सीना दूसरे भारतीयों को धमकाने और डराने के लिए है (हालांकि, जिस तरह से हम महिला सांसदों से डरने लगे हैं, उसे देखते हुए इस पर भी दोबारा सोचने की जरूरत होगी)। असली दुश्मन के सामने यह सब बेकार हो जाता है। ट्रंप हमें समझते हैं, यह मान लेना चाहिए। यह पहली बार नहीं है जब उन्होंने हमें अपनी मनमानी के आगे झुकाया है।

मई 2019 में ट्रंप का घुड़की को बाद भारत को ईरान से तेल खरीदना बंद करना पड़ा। ट्रंप के पूर्व नेशनल सिक्योरिटी एडवाइजर जॉन बोल्टन ने अपनी किताब 'द रूम व्हेयर इट हैपन्ड' में लिखा है कि ट्रंप ने मोदी की चिंताओं को नजरअंदाज कर दिया और अपनी टीम से कहा कि इस फैसले को 'वह मान लेंगे'। इसका मतलब था कि भारत को वह तेल नहीं मिलेगा जो मुफ्त ट्रांसपोर्ट और इंश्योरेंस जैसी रियायतों और 60 दिनों के क्रेडिट के साथ आता था। भारत ने समझाने की कोशिश की कि उसकी कई रिफाइनरियां ईरानी कच्चे तेल को प्रोसेस करने के लिए ही बनाई गई थीं और वे अचानक बदलाव नहीं कर सकतीं, और यह भी कि ईरान से सप्लाई बंद होने से कीमतों और महंगाई पर असर पड़ेगा। ट्रंप ने यह सब मानने से इनकार कर दिया और हमने तब भी उनकी बात मानी थी, जैसा कि हमने अब रूसी तेल और वेनेजुएला और अमेरिकी तेल खरीदने के मामले में भी किया है।

हमें एक बार फिर से सोचना होगा, क्योंकि यह जरूरी है कि भारतीयों को पता चले कि उनके नाम पर क्या किया गया है। सरकारी कामों में विदेशी दखलअंदाजी से संप्रभुता का उल्लंघन होता है। समर्पण तब होता है जब कोई विरोध करना बंद कर देता है और दूसरी तरफ की सत्ता के आगे झुक जाता है। ■

फोटो: वेटी इमेजेज

विरोध अमेरिकी टैरिफ के खिलाफ प्रदर्शन करते व्यापारी और प्रेस से बात करते व्यापार और उद्योग मंत्री पीयूष गोयल

> अमेरिका और भारत के बीच जो हुआ है, वह स्पष्टता और समझ का एक मॉडल है। इसे समझने के लिए जारी हुए बयानों को पढ़ने के अलावा और कुछ करने की जरूरत नहीं है

फोटो: वेटी इमेजेज

सांसत युद्धविराम समझौते के बावजूद 6 फरवरी 2026 को गाज़ा में एक तीन मंजिला इमारत पर इजरायली हमले के बाद लोगों को मलबे से भागकर जान बचानी पड़ी

गाज़ा पुनर्निर्माण में पर्यावरणीय संकट

गाज़ा का पर्यावरणीय संकट बहुआयामी है, जो जीवन को बनाए रखने वाली हर बुनियादी व्यवस्था को प्रभावित करता है

अशोक स्वैन

एक तरफ राजनयिक युद्धविराम की बातें कर रहे हैं, डोनर सम्मेलनों में पुनर्निर्माण के लिए अरबों डॉलर देने का वादा हो रहा है और सुरक्षा रणनीतिकार स्थायित्व वाली योजनाओं का तानाबाना बना रहे हैं, तो दूसरी तरफ गाज़ा की त्रासदी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक को नजरअंदाज किए जाने का खतरा भी मंडरा रहा है। धन, शासन और भू-राजनीति पर चर्चाएं भले ही सुर्खियों और नीतिगत रिपोर्टों में छाई रहें, लेकिन कब्जे और युद्धों के दौरान ध्वस्त हुए बुनियादी ढांचे के नीचे छिपे पर्यावरणीय नुकसान का सामना किए बिना, कोई भी पुनर्निर्माण सतही और अंततः अस्थिर होगा।

गाज़ा का पर्यावरणीय संकट महज मलबे तक सीमित छोटा-मोटा मुद्दा नहीं, एक मूलभूत समस्या है जो जल, मिट्टी, वायु, स्वास्थ्य, आजीविका, कृषि और अंततः समुदायों के लिए गरिमा और दृढ़ता के साथ जीवन फिर से रचने की क्षमता को प्रभावित करती है। गाज़ा पट्टी में पर्यावरणीय चुनौती बड़ा मुद्दा है और मानवीय पीड़ा से गहराई से जुड़ा हुआ भी, जिसने रोजमर्रा की जिंदगी बेहद मुश्किल और खर्चीली बना दी है। गाज़ा का अधिकांश हिस्सा भौतिक रूप से नष्ट है, और अनुमानतः शहरों-कस्बों में करोड़ों टन मलबा बिखरा पड़ा है, जो पुनर्निर्माण में न सिर्फ भयानक रूप से बाधक है बल्कि जिसे अनुकूल परिस्थितियों में भी साफ करने में वर्षों लग सकते हैं और सिर्फ मलबा प्रसंस्करण और परिवहन से ही भारी मात्रा में उत्सर्जन उत्पन्न हो सकता है।

गाज़ा में पर्यावरणीय क्षरण महज मलबे तक सीमित नहीं है। लगातार हमलों और लंबे समय तक बिजली की कमी से जल और स्वच्छता व्यवस्थाएं पंगु हैं, जिससे नागरिकों को पेयजल के सीमित और प्रायः असुरक्षित स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है, जबकि बिना शोधित सीवेज से आसपास, कृषि भूमि और तटीय जल प्रदूषित हैं। हालिया तनाव बढ़ने से पहले भी गाज़ा की जल संरचना बहुत अच्छी नहीं थी। अब, क्षतिग्रस्त पाइपलाइनों, बर्बाद पंपिंग स्टेशनों और निष्क्रिय उपचार सुविधाओं के कारण, जलजनित बीमारियों और दीर्घकालिक प्रदूषण का खतरा बढ़ गया है। कभी स्थानीय खाद्य उत्पादन का आधार रहे कृषि भूमि और बाग-बगीचे समतल किए जा चुके हैं, भारी मशीनों द्वारा संकुचित या विस्फोटक अवशेषों और कचरे से दूषित हैं। विनाश से उत्पन्न धूल, मलबा जलाने और खाना पकाने तथा बिजली के लिए डीजल जेनरेटर और निम्न गुणवत्ता वाले ईंधनों पर निर्भरता ने वायु गुणवत्ता चौपट कर दी है। यानी पर्यावरणीय संकट बहुआयामी है, जो जीवन को बनाए रखने वाली हर बुनियादी व्यवस्था को प्रभावित करता है।

गाज़ा के भविष्य पर मौजूदा विमर्श के मूल में अभी घरों, स्कूलों, क्लीनिकों और सरकारी इमारतों का पुनर्निर्माण का मुद्दा ही है। लेकिन पुनर्निर्माण भी तब तक सार्थक रूप से संभव नहीं, जब तक कि वह भूमि, जल और वायु, जिन पर ये इमारतें निर्भर हैं, बहाल और संरक्षित न हो जाएं। युद्ध का मलबा अपने आप में एक भौतिक और पर्यावरणीय बाधा है, जिसे नई आधारभूत संरचना खड़ी होने से पहले दूर करना जरूरी है। इसमें एस्बेस्टस, भारी धातुएं, ईंधन के अवशेष और अन्य प्रदूषक तत्व शामिल होते हैं, जिन्हें यूं ही छोड़ना स्वास्थ्य के लिए दीर्घकालिक खतरों को न्योता देना है। ऐसे में, जल और स्वच्छता के आधारभूत ढांचे की बहाली किसी भी पुनर्निर्माण योजना के मूल में होना चाहिए। इसके लिए उपचार सुविधाओं का आधुनिकीकरण, विश्वसनीय बिजली आपूर्ति, रिसाव में कमी और पारदर्शी जल गुणवत्ता निगरानी तंत्र बनाना होगा। बिना सुरक्षित जल और स्वच्छता के, दोबारा खड़े किए गए घर किसी काम के नहीं।

कृषि अपने आप में एक और महत्वपूर्ण पर्यावरणीय पहलू है। अंधाधुंध बमबारी और अवैध बस्तियों के कारण बर्बाद कृषि भूमि को व्यवस्थित पुनर्वास के बिना उत्पादन के लिए फिर इस्तेमाल में लाना संभव नहीं है। सबसे पहले तो जीवित बम और युद्ध के अन्य अवशेष हटाने होंगे, क्योंकि इनके असर से दूषित खेत दुर्गम और खतरनाक होते हैं। सुनिश्चित करना होगा कि किसान बिना बाधा या भय के अपने खेतों तक पहुंचें और खेती कर पाएं, अन्यथा भूमि पुनर्वास योजनाएं सैद्धांतिक ही रह जाएंगी। मृदा परीक्षण से संदूषण और लवणता के स्तर की पहचान करनी होगी, जिसके बाद जहरीले मलबे को हटाना, सिंचाई प्रणालियों की बहाली और जैविक पदार्थों और सावधानीपूर्वक प्रबंधन के ज़रिए मृदा की उर्वरता का पुनर्निर्माण करना होगा। कृषि पुनरुद्धार को रफ्तार देने के लिए भूमि और जल की गुणवत्ता में सुधार जरूरी है, वरना खाद्य असुरक्षा और आर्थिक निर्भरता और गहराएगी।

एक और जटिल परत पुनर्निर्माण से जुड़ा राजनीतिक पहलू है। गाज़ा के भविष्य के लिए प्रतिस्पर्धी नजरिया बाहरी तौर पर संचालित पुनर्विकास योजनाओं से लेकर भूमि उपयोग और जनसंख्या वितरण को मौलिक रूप से बदलने वाले प्रस्तावों तक व्याप्त हैं। चिंताएं बढ़ रही हैं कि पुनर्निर्माण प्रक्रियाओं का इस्तेमाल राजनीतिक दबाव या जनसांख्यिकीय हेरफेर के साधन के तौर पर किया जा सकता है, जहां सामग्री, परमिट और योजना पर नियंत्रण निर्धारित करेगा कि कौन लौट सकता है, पुनर्निर्माण कर सकता है या रह सकता है। ऐसे में, रणनीतिक गुणा-गणित के बीच पर्यावरणीय चिंताएं दरकिनार किए जाने का खतरा है। राजनीतिक हितों के लिए पर्यावरणीय सुधार की अनदेखी दीर्घकालिक अस्थिरता बढ़ाएगी। समावेशी निर्णय क्षमता और स्वतंत्र निगरानी के जरिये पर्यावरणीय स्थिरता की रक्षा करनी होगी, यह सुनिश्चित करते हुए कि पुनर्निर्माण भू-राजनीतिक एजेंडों का पूरक बनने के बजाय आबादी के हित देखने वाला होगा।

अपशिष्ट प्रबंधन सबसे तात्कालिक और खुली पर्यावरणीय चुनौती है। घरेलू कचरा और खतरनाक पदार्थों से मिश्रित मलबा तत्काल स्वास्थ्य जोखिम और दीर्घकालिक प्रदूषण का कारक बनते हैं। ऐसे में एक सतत पुनर्निर्माण रणनीति के तौर पर मलबे की व्यवस्थित मैपिंग, सुरक्षित छंटाई और जहां संभव हो वहां पुनर्चक्रण तथा नियंत्रित निपटान स्थलों की स्थापना को प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

ऊर्जा प्रणालियों का पर्यावरणीय स्थिरता से भी गहरा रिश्ता है। संकट की स्थिति में, डीजल जेनरेटर और अस्थायी ईंधन स्रोतों पर निर्भरता से वायु प्रदूषण और परिचालन लागत तो बढ़ती ही है, विश्वसनीयता भी कम होती है। पुनर्निर्माण ज्यादा लचीली और स्वच्छ ऊर्जा प्रणालियों में निवेश का अवसर देता है जो पर्यावरणीय नुकसान बढ़ाए बिना जल उपचार, स्वास्थ्य सुविधाओं और घरों को बिजली प्रदान कर सकती हैं। नवीकरणीय ऊर्जा और ऊर्जा कुशल डिजाइन को एकीकृत करने से लचीलापन लाते हुए भविष्य की कमजोरियों को कम किया जा सकता है, खासतौर से ऐसे क्षेत्र में जहां आपूर्ति श्रृंखलाएं अक्सर बाधित होती हैं।

पर्यावरणीय नजरिये से टिकाऊ पुनर्निर्माण में अंतरराष्ट्रीय संगठनों, विश्वविद्यालयों और तकनीकी विशेषज्ञों की अहम भूमिका है। वे स्वतंत्र पर्यावरणीय आकलन, प्रदूषण मानचित्रण और जोखिम विश्लेषण में सहायक होते हैं और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल कम लागत वाली जल उपचार प्रौद्योगिकी और अपशिष्ट पुनर्चक्रण प्रणालियां डिजाइन करने में मददगार हो सकते हैं। हालांकि, बाहरी हस्तक्षेप स्थानीय क्षमता को मजबूत करने के लिए होना चाहिए, न कि उसे प्रतिस्थापित करने के लिए। ऐसे में गाज़ा के पेशेवरों और संस्थानों को प्रशिक्षण और पारदर्शी डेटा प्रणालियों द्वारा समर्थित दीर्घकालिक पर्यावरणीय शासन की कमान अपने हाथ में लेने के साथ ही, वित्तपोषण तंत्र में पर्यावरणीय प्रभाव आकलन और लचीलेपन को वैकल्पिक घटकों के बजाय मुख्य शर्तों में शामिल करना चाहिए।

आखिरकार, गाज़ा में पुनर्निर्माण का मूल्यांकन महज इससे नहीं होगा कि कितने भवन बने, बल्कि इससे किया जाएगा कि दैनिक जीवन कितना सुरक्षित, स्वस्थ और टिकाऊ होता है। स्वच्छ पेयजल, खाद्य उत्पादन योग्य मिट्टी, विषैली धूल रहित वायु और खतरनाक मलबे से मुक्त इलाके ही पुनर्निर्माण की असल नींव हैं। अल्पकालिक राजनीतिक या वित्तीय लाभ के लिए इन पर्यावरणीय पहलुओं की अनदेखी से अतीत की गलतियां ही दोहराई जाएंगी और गाज़ा बार-बार होने वाले संकट के दुश्चक्र में फंस जाएगा।

गाज़ा का पुनर्निर्माण प्रायः एक कूटनीतिक और सुरक्षा चुनौती के रूप में देखा जाता है। यह सच तो है ही, ऐतिहासिक स्तर की एक पर्यावरणीय चुनौती भी है। पुनर्निर्माण के मूल में स्थिरता समाहित हो, तो गाज़ा की पुनर्रचना लचीलेपन को मजबूत और मानव सुरक्षा में सुधार कर सकती है। उपेक्षा की स्थिति में पुनर्निर्माण अस्थिर आधार पर टिका होगा, जो प्रदूषण, कमी और नए सिरे से अस्थिरता के बोझ तले ढहने के लिए उत्तरदायी होगा। चुनाव गति और स्थायित्व के बीच नहीं है। मामला दिखावे वाले पुनर्निर्माण और जीवन को बनाए रखने वाले पुनर्निर्माण के बीच चुनाव करने का है। ■

> गाज़ा का पर्यावरणीय संकट महज़ मलबे तक सीमित नहीं बल्कि बुनियादी है। यहां हवा, पानी, मिट्टी का प्रदूषण अब इतना भयावह है कि फिर से जीवन रचना कोई आसान काम नहीं

अशोक स्वैन स्वीडन के उप्सला विश्वविद्यालय में शांति और संघर्ष अनुसंधान के प्रोफेसर हैं।

भारत के स्वधर्म का विस्तार है समाजवाद

अपने विशिष्ट भारतीय अंदाज में समता का विचार गणराज्य के स्वधर्म को परिभाषित करता है

योगेन्द्र यादव

समता एक आधुनिक विचार है। सभी इंसान बराबर हैं, यह कोई नई बात नहीं है। लेकिन चूंकि इंसान बराबर हैं, इसलिए उन्हें बराबर संसाधन और सम्मान मिले, यह विचारधारा पूरी दुनिया के लिए नई है। समता को धुरी बनाकर एक नई सामाजिक व्यवस्था खड़ी करने की कल्पना तो बिल्कुल ही नई है। इस बारे में दो राय नहीं हो सकती कि समता का यह विचार उन्नीसवीं सदी में यूरोप की समाजवादी विचारधारा और बीसवीं सदी में बोल्शेविक क्रांति के असर से भारत में आया। इसलिए अक्सर यह मान लिया जाता है कि समता की भावना भारतीय मानस के लिए अपरिचित या अस्वीकार्य है।

भारत के स्वधर्म की खोज करते समय इस मान्यता की पड़ताल करना लाजिमी है। एक मायने में पूरी दुनिया का इतिहास गैर-बराबरी और अन्याय का इतिहास रहा है। लेकिन भारतीय सभ्यता में जातीय गैर बराबरी एक ऐसा सच है जो उसे दो अर्थ में बाकी दुनिया से अलग करता है। पहला तो जाति व्यवस्था गैर बराबरी को स्थायी संस्थागत ढांचा देती है। दूसरा हिन्दू धार्मिक ग्रन्थ इस गैर बराबरी को एक वैचारिक और धार्मिक जामा पहनाते हैं। लेकिन इस आधार पर विषमता को भारत का स्वधर्म मानना जल्दबाजी होगी। किसी व्यवस्था का होना भर यह साबित नहीं करता कि वह समाज का आदर्श था। भारत का स्वधर्म शास्त्रों और बादशाहों का मोहताज नहीं रहा। इसकी सबसे स्पष्ट व्याख्या आंदोलनों में हुई — बौद्ध दर्शन, सूफी-भक्ति परंपरा और राष्ट्रीय आंदोलन। और इन तीनो बड़े आंदोलनों ने एक स्वर में जाति व्यवस्था को खारिज किया। इसलिए समता के विचार के प्रसार और इसके भारतीय स्वरूप को हम केवल विदेशी असर से नहीं समझ सकते। जाहिर है, समाजवादी विचारधारा भारत में किसी कोरे कागज पर नहीं लिखी गई थी। पहले से स्थापित विचारों से साथ द्वंद्व और संवाद के जरिये ही समता के विचार ने भारतीय मानस में अपनी जगह बनाई।

इसके मूल में है करुणा की अवधारणा। किसी दूसरे का दुख देखकर हमारे हृदय में जो कंपन होता है वह है करुणा। पहले यह विचार दया के स्वरूप में आता है। महाभारत का अनुशासन पर्व दया को धर्म का मूल बताता है। लेकिन बौद्ध दर्शन में यह अवधारणा कई मायने में बदल जाती है। करुणा केवल दया भावना नहीं है। जहां भी प्राणी दुःख में हों, उनके दुःख को हटाने की गहरी इच्छा ही करुणा है। बौद्ध दर्शन इस भावना को सक्रिय कर्म से जोड़ता है। और इस कर्म को समझदारी, यानी प्रज्ञा से। अपने इस मूल स्वरूप में करुणा की अवधारणा में उन सब विचारों का बीज है तो आगे चलकर समाजवाद कहलाया। अगर करुणा सच्ची है तो वह दुख निवारण के व्यक्तिगत प्रयास तक सीमित नहीं रह सकती। उसे समाज में व्याप्त दुख के ढांचागत कारणों पर गौर करना होगा और उसके लिए आमूल-चूल संस्थागत परिवर्तन की मांग करनी पड़ेगी। करुणा को प्रज्ञा और सम्यक दृष्टि से जोड़ना बौद्ध दर्शन को कई मायने में समता के आधुनिक दर्शन से कहीं आगे लाकर खड़ा करता है।

सूफी और भक्ति आंदोलन ने समता के विचार को एक नया आयाम दिया। सूफी संतों की वाणी में करुणा को रहम का रूप दिया गया है। "बिस्मिल्लाहि र्रहमानि र्रहीम" की जड़ में इस्लाम की यह धारणा है कि यह सृष्टि अल्लाह की रहमत की अभिव्यक्ति है। भारत की सूफी परंपरा ने इस बुनियादी सूत्र से एक नया सिद्धांत गढ़ा।अगर दुनिया अल्लाह की रहमत से बनी है तो हमें दुनिया के हर प्राणी पर रहम रखनी चाहिए। रहम सिर्फ ईश्वर का नहीं बल्कि इंसान का भी गुण बने, यही रूहानियत का रास्ता है। यही एक सच्चे सूफी की पहचान है। सामाजिक संदर्भ में इसका मतलब है कि इंसान दूसरे इंसानों की खिदमत करे, सभी से मुहब्बत करे। रहम ही अदल् या न्याय का आधार है।

> सूफी और भक्ति आंदोलन ने समता के विचार को नया आयाम दिया। सूफी संतों की वाणी में करुणा को रहम का रूप दिया गया है। "बिस्मिल्लाहि र्रहमानि र्रहीम" की जड़ में इस्लाम की यह धारणा है कि यह सृष्टि अल्लाह की रहमत की अभिव्यक्ति है

फोटो: गेटी इमेजेज

गणतंत्र का जश्न भारत का संविधान समानता के विचार से परिपूर्ण है

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये, तथा उसके समस्त नागरिकों को:
सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की स्वतंत्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता
प्राप्त कराने के लिये,
तथा उन सब में
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता
और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता
बढ़ाने के लिये
दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई.
(मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छः विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मसर्पित करते हैं।

भक्ति आंदोलन के संतों ने भी अपने तरीके से और कई बार सूफी संतों के साथ जुड़कर समता के संस्कार को गहरा किया। आम तौर पर उन्होंने सामाजिक-आर्थिक गैर बराबरी को सीधे तौर पर चुनौती देने की बजाय उसके दार्शनिक और आध्यात्मिक आधार पर चोट की। कबीर, रविदास, तुकाराम और बसवन्ना जैसे कुछ संतों ने सीधे-सीधे जाति व्यवस्था की ऊंच-नीच पर प्रहार किया। लेकिन जिन्होंने ऐसा नहीं किया, उन्होंने भी समाज में समता का संस्कार पुष्ट किया।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में स्वधर्म के इस अंश को नए सिरे से परिभाषित करने के दो तरह के प्रयास हुए। पहला, पश्चिम की समाजवादी विचारधारा और फिर रूस की बोल्शेविक क्रांति से प्रेरणा लेकर आर्थिक समता स्थापित करने का प्रयास था। दूसरा, औपनिवेशिक राज और शिक्षा से मिले अवसर का उपयोग कर जाति व्यवस्था और पुरुषवादी सत्ता को चुनौती देकर सामाजिक समता स्थापित करने का प्रयास था। यह भारत के स्वधर्म में उलट-फेर नहीं था बल्कि उसमें नए आयाम जोड़कर उसका विस्तार था। इस विस्तार के तीन पक्ष थे। पहला, समता अब एक आध्यात्मिक सिद्धांत की जगह समाज दर्शन का सिद्धांत बना। इस दर्शन ने ईश्वर के समक्ष बराबरी की जगह भौतिक जगत में बराबरी पर ध्यान दिया। दूसरा, समता का विचार अनेक मूल्यों में से एक नहीं था, बल्कि यह आदर्श समाज निर्माण का केन्द्र बिंदु बना। या, कम-से-कम एक ऐसा मूल्य बना जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती थी। तीसरा, अब समता की जिम्मेदारी स्वयं व्यक्ति पर नहीं बल्कि राज्य पर थी। समतामूलक समाज बनाना अब केवल एक व्यक्तिगत संस्कार बनाने की चुनौती नहीं रही। यह अब एक व्यवस्था परिवर्तन की चुनौती बनी।

भारत के संविधान ने इन तीनों अर्थों में समता के आदर्श को समाहित किया। 'सेकुलरवाद' की तरह यहां भी यह बहस बेमानी होगी कि 'समाजवाद' संविधान में कब और क्यों डाला गया। सच यह है कि अपने मूल स्वरूप में ही भारत का संविधान समता के विचार से ओतप्रोत है। अपने विशिष्ट भारतीय अंदाज में समता का विचार गणराज्य के स्वधर्म को परिभाषित करता है। ■

योगेन्द्र यादव की नई पुस्तक "गणराज्य का स्वधर्म" (सेतु प्रकाशन) से उद्धृत और संपादित अंश

विज्ञान, वैज्ञानिक विवेक, कलाएं और समाज

समाज में विज्ञान का प्रभाव बढ़ता है, तब कलाओं की भूमिका और अधिक आवश्यक हो जाती है

शैलेन्द्र चौहान

विज्ञान, वैज्ञानिक विवेक, कलाएं और समाज—ये चारों शब्द अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र प्रतीत होते हैं, पर गहरे स्तर पर वे एक-दूसरे से ऐसे अंतर्संबंधित हैं कि किसी एक को अलग करके समझना अधूरा सत्य ही देगा। विज्ञान केवल प्रयोगशालाओं में सीमित ज्ञान-उत्पादन की प्रक्रिया नहीं है, न ही कलाएं मात्र सौंदर्य-बोध या भावनात्मक अभिव्यक्ति का क्षेत्र हैं। वैज्ञानिक विवेक इन दोनों के बीच सेतु का काम करता है और समाज वह व्यापक धरातल है जहां इन सबकी सार्थकता, प्रभाव और सीमाएं स्पष्ट होती हैं। इन चारों के आपसी रिश्ते को समझना आधुनिक समय की सबसे बड़ी बौद्धिक चुनौतियों में से एक है, क्योंकि आज का समाज एक ओर विज्ञान और तकनीक के अभूतपूर्व विस्तार से संचालित हो रहा है, वहीं दूसरी ओर संवेदनात्मक, नैतिक और मानवीय संकटों से भी घिरा हुआ है।

विज्ञान का मूल स्वभाव जिज्ञासा, संदेह और परीक्षण पर आधारित है। वह किसी भी स्थापित सत्य को अंतिम नहीं मानता, बल्कि उसे निरंतर जांच और संशोधन की प्रक्रिया से गुजारता है। यही वैज्ञानिक विवेक का मूल तत्व है - अंधविश्वास का निषेध, तर्क की स्वीकृति और अनुभवजन्य प्रमाण पर भरोसा। लेकिन समस्या तब उत्पन्न होती है जब विज्ञान को केवल तकनीकी उपयोगिता या सत्ता-समर्थक उपकरण के रूप में देखा जाने लगता है। आधुनिक पूंजीवादी समाज में विज्ञान प्रायः उत्पादन, मुनाफे और नियंत्रण की भाषा में अनूदित हो जाता है। इस स्थिति में वैज्ञानिक विवेक का आलोचनात्मक पक्ष कमजोर पड़ने लगता है और विज्ञान स्वयं एक नए प्रकार के 'आधिकारिक सत्य' में बदलने का खतरा उठाने लगता है। यहां कलाएं एक आवश्यक हस्तक्षेप के रूप में सामने आती हैं, क्योंकि वे प्रश्न पूछने, असहजता पैदा करने और उन अनुभवों को अभिव्यक्त करने का माध्यम हैं जिन्हें वैज्ञानिक आंकड़ों और सूत्रों में नहीं बांधा जा सकता।

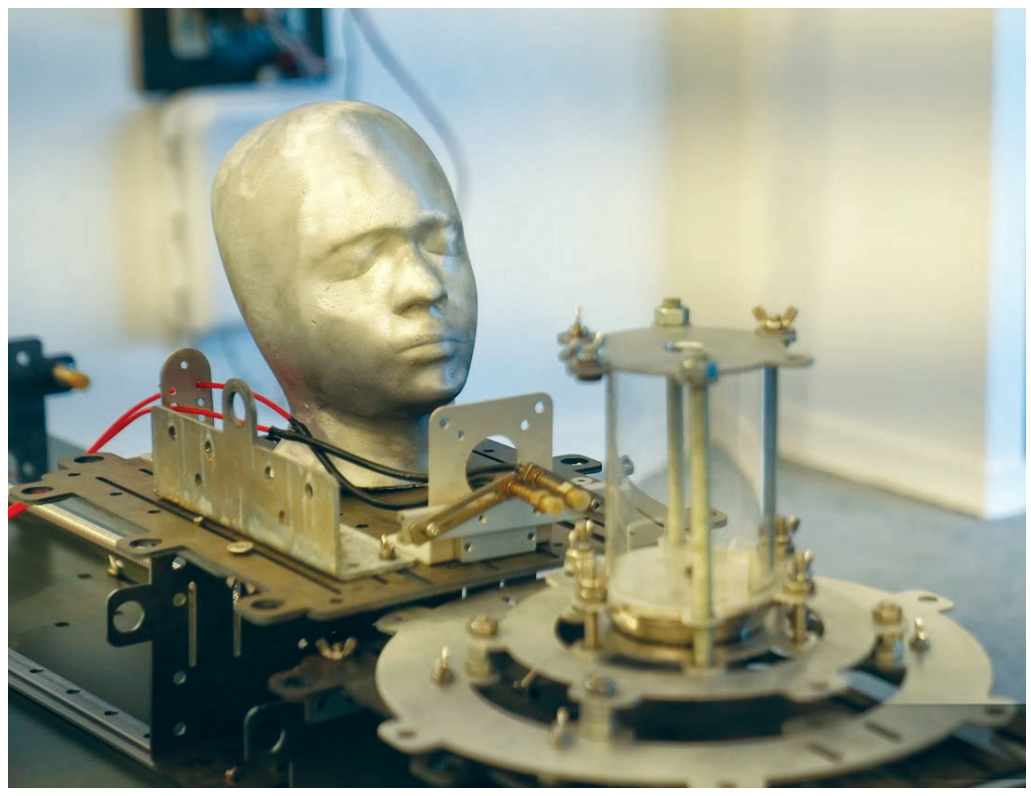

कलाएं समाज की सामूहिक संवेदना की अभिव्यक्ति हैं। साहित्य, संगीत, चित्रकला, रंगमंच या सिनेमा - ये सभी मानव अनुभव के उन आयामों को सामने लाते हैं जहां तर्क अकेला पर्याप्त नहीं होता। प्रेम, भय, पीड़ा, विस्थापन, स्मृति और आशा जैसे अनुभव विज्ञान की भाषा में मापे जा सकते हैं, पर उनकी अनुभूति और अर्थ-निर्मिति कलाओं के माध्यम से ही संभव होती है। यही कारण है कि जब समाज में विज्ञान का प्रभाव बढ़ता है, तब कलाओं की भूमिका समाप्त नहीं होती, बल्कि और अधिक जटिल और आवश्यक हो जाती है। कलाएं विज्ञान से टकराती नहीं हैं, बल्कि उसके एकांगीपन को उजागर करती हैं। वे यह याद दिलाती हैं कि मनुष्य केवल एक जैविक या गणनात्मक इकाई नहीं, बल्कि एक संवेदनशील, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्राणी है।

वैज्ञानिक विवेक यदि केवल गणनात्मक तर्क तक सीमित रह जाए, तो वह समाज के नैतिक और मानवीय प्रश्नों से कट जाता है। उदाहरण के लिए, तकनीकी प्रगति यह संभव बना देती है कि युद्ध अधिक 'सटीक' और 'कुशल' हो जाए, लेकिन यह प्रश्न कि युद्ध नैतिक रूप से उचित है या नहीं, विज्ञान स्वयं नहीं सुलझा सकता। यहां वैज्ञानिक विवेक को सामाजिक और कलात्मक विवेक के साथ संवाद करना पड़ता है। साहित्य और कला युद्ध की भयावहता, मानवीय क्षति और मानसिक आघात को जिस तीव्रता से सामने लाती हैं, वह वैज्ञानिक रिपोर्टों में संभव नहीं। इस तरह कलाएं विज्ञान को मानवीय संदर्भ प्रदान करती हैं और समाज को यह सोचने के लिए बाध्य करती हैं कि प्रगति का अर्थ केवल तकनीकी उन्नति नहीं हो सकता।

समाज विज्ञान और कलाओं के इस संवाद का वास्तविक क्षेत्र है। समाज ही तय करता है कि विज्ञान किस दिशा में आगे बढ़ेगा और कलाएं किस अनुभव को केन्द्र में रखेंगी। लेकिन समाज स्वयं कोई स्थिर इकाई नहीं है; वह शक्ति-संरचनाओं, आर्थिक हितों, सांस्कृतिक परंपराओं और ऐतिहासिक परिस्थितियों से निर्मित होता है। इसीलिए विज्ञान भी तटस्थ नहीं होता। जिन प्रश्नों पर वैज्ञानिक अनुसंधान होता है, जिन तकनीकों को विकसित किया जाता है और जिन खोजों को प्राथमिकता मिलती है - ये सभी सामाजिक और राजनीतिक निर्णयों से प्रभावित होते हैं। वैज्ञानिक विवेक का अर्थ केवल प्रयोगशाला में सही निष्कर्ष निकालना नहीं, बल्कि इन सामाजिक संदर्भों को समझना और उन पर आलोचनात्मक दृष्टि डालना भी है।

कलाएं इस आलोचनात्मक दृष्टि को जनसुलभ बनाती हैं। एक उपन्यास, कविता या फिल्म वैज्ञानिक विवेक की जटिल अवधारणाओं को आम जन के अनुभव से जोड़ सकती है। उदाहरण के लिए, औद्योगिकीकरण और पर्यावरण संकट पर विज्ञान आंकड़े और पूर्वानुमान प्रस्तुत करता है, लेकिन साहित्य और कला उस संकट की मानवीय कहानी कहती हैं—सूखे से जूझते किसान, प्रदूषण से बीमार होते बच्चे, उजड़ते जंगल और टूटते रिश्ते। इस तरह कलाएं वैज्ञानिक चेतना को संवेदनात्मक गहराई देती हैं और समाज में उसके प्रति जिम्मेदारी का भाव पैदा करती हैं।

आधुनिक समय में एक बड़ा संकट यह है कि विज्ञान और कला को दो विपरीत ध्रुवों के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा है - एक को 'तर्कसंगत' और दूसरे को 'भावनात्मक' कहकर अलग कर दिया जाता है। यह विभाजन न केवल कृत्रिम है, बल्कि खतरनाक भी। इतिहास गवाह है कि महान वैज्ञानिकों में गहरी कलात्मक संवेदना रही है और महान कलाकारों में तीव्र बौद्धिक जिज्ञासा। वैज्ञानिक विवेक और कलात्मक कल्पना दोनों ही यथास्थिति को तोड़ने की क्षमता रखते हैं। फर्क केवल इतना है कि विज्ञान उस तोड़ को नियमों और सिद्धांतों की भाषा में व्यक्त करता है, जबकि कला प्रतीकों और रूपकों के माध्यम से।

> आधुनिक समय में एक बड़ा संकट यह है कि विज्ञान और कला को दो विपरीत ध्रुवों के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा है - एक को 'तर्कसंगत' और दूसरे को 'भावनात्मक' कहकर अलग कर दिया जाता है। यह विभाजन न केवल कृत्रिम है, बल्कि खतरनाक भी

समाज के लोकतांत्रिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि वैज्ञानिक विवेक और कलाएं एक-दूसरे से संवाद में रहें। यदि समाज में विज्ञान का प्रभुत्व बिना कलात्मक और नैतिक आलोचना के स्थापित हो जाए, तो वह तकनीकी तानाशाही की ओर बढ़ सकता है। और यदि कलाएं वैज्ञानिक विवेक से पूरी तरह कट जाएं, तो वे आत्ममुग्धता और अव्यावहारिक भावुकता में फंस सकती हैं। संतुलन इसी में है कि विज्ञान अपनी सीमाओं को स्वीकार करे और कलाएं अपने सामाजिक दायित्व को समझें।

भारतीय संदर्भ में यह प्रश्न और भी जटिल हो जाता है। यहां विज्ञान, परंपरा और कलाएं लंबे समय से एक-दूसरे में गुंथी हुई रही हैं। प्राचीन ज्ञान-परंपराओं में खगोलशास्त्र, गणित और चिकित्सा के साथ-साथ दर्शन, काव्य और संगीत का सहअस्तित्व मिलता है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब परंपरा के नाम पर वैज्ञानिक विवेक को नकारा जाता है या आधुनिकता के नाम पर सांस्कृतिक और कलात्मक विरासत को अनुपयोगी घोषित कर दिया जाता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि वैज्ञानिक विवेक को परंपरा-विरोधी हथियार की तरह नहीं, बल्कि आलोचनात्मक समझ के उपकरण के रूप में विकसित किया जाए और कलाओं को अतीत की स्मृति तक सीमित न रखकर वर्तमान और भविष्य के प्रश्नों से जोड़ा जाए।

अंततः विज्ञान, वैज्ञानिक विवेक, कलाएं और समाज - ये चारों मिलकर ही मनुष्य के समग्र विकास की संभावना बनाते हैं। विज्ञान हमें जानने की क्षमता देता है, वैज्ञानिक विवेक हमें सोचने और प्रश्न करने की शक्ति देता है, कलाएं हमें महसूस करने और अर्थ रचने का साहस देती हैं, और समाज इन सबको व्यवहार में उतारने का क्षेत्र प्रदान करता है। जब इन चारों के बीच संतुलित और आलोचनात्मक संवाद होता है, तभी प्रगति मानवीय बनती है। अन्यथा विज्ञान अमानवीय तकनीक में, कला निरर्थक सजावट में और समाज संवेदनहीन व्यवस्था में बदल सकता है।

इसलिए आज के समय में सबसे जरूरी कार्य यह है कि हम इन सभी के अंतर्संबंधों को समझें, उन्हें अलग-अलग खांचों में बांटने के बजाय एक साझा मानवीय परियोजना के रूप में देखें - एक ऐसी परियोजना जो ज्ञान के साथ करुणा, तर्क के साथ संवेदना और प्रगति के साथ नैतिक जिम्मेदारी को भी साथ लेकर चले। ■

Published Date 15 February, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

बिना चरवाहों के कैसी रह जाएगी अरावली

हरियाणा की अरावली में एक गुज्जर पशुपालक के साथ बिताया गया एक दिन बहुत कुछ कह जाता है

नितेश कौशिक / सुनील हरसाना

बीड़ी के कश के बीच फरीदाबाद के मांगर गांव के गुज्जर समुदाय के चरवाहे रतन सिंह की पैनी नजर अपनी बकरियों पर है। अरावली की चढ़ाई चढ़कर जमीन के घासदार टुकड़े पर पहुंचते ही वे उन्हें पानी पिलाने के इरादे से पुकार लगाते हैं। "टर्र, टर्र" की तेज आवाज़ पर उनकी बकरियां इकट्ठा होने लगती हैं। कुल 45 हैं।

रतन बताते हैं,"हर पुकार की आवाज़, सुर और लय अलग होती है, और हर एक आवाज का अलग मतलब होता है। झुंड को नियंत्रित करने के लिए ऐसी दर्जनों आवाज़ होती हैं।"

"आव, आव"... की नरम आवाज़ बकरियों अपने पास बुलाने के लिए है और "ले ले ले"... यानी बकरियों के नमक खाने का समय हो गया है।

"आवले, आवले ऊंह ऊंह" का दोहरा मतलब है: झुंड को भरोसा दिलाना कि चरवाहा पास है, और संभावित शिकारियों को चेतावनी कि झुंड अकेला नहीं है।

रतन सिंह (65) सुर और ताल का सूक्ष्म अंतर समझाते हुए हर पुकार का अभिनय करके दिखाते हैं, और बताते हैं कि ये ध्वनियां कैसे चरवाहे और झुंड के बीच एक प्राचीन बंधन को बनाए रखती हैं। वह दिल्ली-हरियाणा सीमा स्थित अरावली शृंखला में बसे मांगर गांव से हैं, जो अपनी समृद्ध जैव-विविधता के लिए जाना जाता है।

दिल्ली से हरियाणा और राजस्थान होते हुए गुजरात तक देश के उत्तर-पश्चिम में फैली अरावली नवंबर 2025 के सुप्रीम कोर्ट के उस आदेश के बाद एक पर्यावरणीय बहस का केन्द्र बन गई है, जिसमें कानूनी संरक्षण केवल उन हिस्सों तक सीमित कर दिया गया जो 100 मीटर से अधिक ऊंचाई के हैं। जहां पारिस्थितिकीविदों और सिविल सोसाइटी समूहों ने इस फ़ैसले पर निराशा जताई है, वहीं रतन सिंह जैसे परिवार इन जमीनों की पारंपरिक देखभाल की जिम्मेदारी आज भी निभा रहे हैं। बीते 31 दिसंबर 2025 को सुप्रीम कोर्ट ने जन आक्रोश का स्वतः संज्ञान लेते हुए अरावली पर अपना पिछला फैसला स्थगित कर दिया, और एक नई उच्चस्तरीय समिति गठित करने का प्रस्ताव भी दिया जो यह विश्लेषण करेगी कि पिछले आदेश में दी गई अरावली पहाड़ियों की नई परिभाषा से बाहर हो गए इलाकों में खनन की वजह से अरावली पर्वतमाला की पारिस्थितिकी को खतरा है या नहीं।

मांगर के कुल 4,262 एकड़ क्षेत्र का लगभग 90 प्रतिशत हिस्सा जंगलों से ढका है, जिनमें उष्णकटिबंधीय शुष्क पर्णपाती और उष्णकटिबंधीय कांटेदार वृक्ष पाए जाते हैं। यहां कम-से-कम 40 प्रजातियों के पेड़ और 30 प्रजातियों की झाड़ियां हैं, और सिंह हर एक को पहचानते हैं। धौ (एनोजाइसस पेंडुला) प्रमुख वृक्ष प्रजाति है, जो भारी चराई के दबाव के कारण अब अक्सर झाड़ी जैसी दिखती है; इसके अलावा गंगेर (ग्रेविया टेनैक्स), आटन (ग्रेविया फ्लेवेसेंस), रोंझ (वैकेलिया ल्यूकोफ्लोइया) और झड़बेर (ज़िज़िफ़स नुम्युलारिया) हैं, जो सभी चरने वाले झुंडों के लिए आम चारा हैं।

अरावली को ओपन स्क्रब फॉरेस्ट, यानी खुला झाड़ीदार जंगल माना जाता है। यह ऐसे जंगल होते हैं जिनमें वृक्ष आवरण सबसे कम (10 से 40 प्रतिशत) होता है। सरकारी अभिलेखों में इन्हें अक्सर 'बंजर भूमि' दर्ज किया जाता है, और वानिकी परियोजनाओं के जरिये इन्हें 'सुधारने' या आर्थिक रूप से उत्पादक बनाने की कोशिशें होती हैं। लेकिन सिंह जैसे स्थानीय चरवाहे हमेशा से जानते हैं कि प्रोसोपिस जुलीफ्लोरा, जिसे यहां 'विलायती कीकर' कहा जाता है, चारे के रूप में कम उपयोगी है, हालांकि अब मवेशी इसकी फलियां खाने लगे हैं, और यह पेड़ इस क्षेत्र में ईंधन लकड़ी का मुख्य स्रोत बन गया है। रतन उदासी से कहते हैं, "पहाड़ में पुराने देशी पेड़ों की जगह विलायती कीकर जैसी प्रजातियों ने ले ली है। जिन देशी पेड़ों और झाड़ियों पर पहले जानवर निर्भर थे, वे ज्यादातर चारे के काम आते थे।"

रतन सिंह हरसाना (गुज्जर) समुदाय से हैं, जो ऊंट, गाय, बकरी, भैंस और भेड़ पालता है। सदियों से ये लोग अपनी आजीविका के लिए इन जंगलों पर निर्भर रहे हैं और इनके संरक्षण में अहम भूमिका निभाते आए हैं। समुदाय द्वारा अपने आराध्य देवता गुदड़िया बाबा की स्मृति में संरक्षित पवित्र उपवन 'मांगर बनी' संरक्षण का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। मांगर बानी राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली की सीमा पर स्थित अंतिम शेष प्राकृतिक वन है। अरावली के अन्य हिस्सों में वानिकी और गैर-वानिकी गतिविधियों के कारण जहां देशी प्रजातियां लुप्त होने के कगार पर हैं, वहीं यहां वे आज भी फल-फूल रही हैं। धौ (टर्मिनेलिया पेंडुला) अरावली क्षेत्र की प्रमुख वृक्ष प्रजाति है, जो कभी पथरीली ढलानों पर आमतौर पर पाई जाती थी, आज चराई के भारी दबाव में है। राष्ट्रीय राजधानी के आसपास मांगर बानी ही एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जहां सैकड़ों वर्षों पुराने हजारों धौ के पेड़ आज भी बहुत अच्छी अवस्था में मौजूद हैं। इसका एक बड़ा कारण स्थानीय गुज्जर समुदाय की संत गुदड़िया बाबा के प्रति आस्था है, जिनके बारे में माना जाता है कि उन्होंने इसी जंगल में तपस्या की थी और अंततः वन में विलीन होकर इसके पेड़-पौधों में वास करने लगे।

रतन बताते हैं कि स्थानीय लोगों के प्रयासों की बदौलत ही यह क्षेत्र आज भी 245 पक्षी प्रजातियों को आश्रय देता है, जिनमें संकटग्रस्त मिस्री गिद्ध और लाल-सिर वाला गिद्ध शामिल हैं। दूधराज (फ्लाइकैचर) और नवरंग (इंडियन पिट्टा) पक्षी जैसी प्रवासी प्रजातियां भी हैं, जो यहां प्रजनन करती हैं। इन जंगलों में कम-से-कम 20 स्तनधारी प्रजातियां भी पाई जाती हैं, जिनमें तेंदुआ, धारीदार लकड़बग्घा, जंगली बिल्ली, जंगली सियार, भारतीय सुनहरा गीदड़, छोटा भारतीय सिवेट (गंधबिलाव), एशियाई पाम सिवेट और भारतीय धूसर नेवला शामिल हैं।

जीवन पारंपरिक चरवाहा रतन सिंह का दिन पौ फटने से पहले शुरू होता है और दिन में बहुत कम ही राहत मिल पाती है

> राष्ट्रीय राजधानी के आसपास मांगर बानी ही है जहां सैकड़ों वर्ष पुराने हजारों धौ के पेड़ आज भी बहुत अच्छी अवस्था में मौजूद हैं। इसका बड़ा कारण गुज्जर समुदाय की संत गुदड़िया बाबा को लेकर मान्यता है कि उन्होंने इसी जंगल में तपस्या की थी और अब भी यहीं पेड़-पौधों में वास करते हैं

*

रतन सिंह का दिन पौ फटने से पहले शुरू हो जाता है। सुबह पांच बजे वे अपनी देशी बकरियों के झुंड के छोटे बच्चों के लिए हरी फुनगियां काटते हैं, क्योंकि मेमने इतने छोटे होते हैं कि चराई पर नहीं जा सकते। वे रेवाड़ा (बकरियों के लिए घेरा हुआ बाड़ा) में ही रहेंगे। वे जल्दी से नहा-धोकर गेहूं की रोटियों का भरपेट भोजन करते हैं फिर दिन भर के लिए जरूरी सामान - एक साफ़ी (सूती कपड़ा), एक लाठी और पानी की बोतल लेते हैं, और लंबी दिनचर्या पर निकल पड़ते हैं।

चराई के रास्ते की शुरुआत मांगर गांव के बाहरी हिस्से से होती है। रास्ते और रोज़मर्रा की दिनचर्या से बकरियों का परिचय साफ झलकता है। जानवर आगे-आगे उछलते चलते हैं, लेकिन रतन पूरी तरह सतर्क रहते हैं। मांगर बनी के आसपास का इलाका हरियाणा अरावली का घना वन क्षेत्र है, जहां तेंदुए सहित बड़ी संख्या में वन्यजीव रहते हैं। रतन कहते हैं- "पहले बहुत लोग पशु पालते थे, इसलिए नुकसान बंट जाता था। आज जो थोड़े-से पशुपालक बचे हैं उन्हें इस नुकसान का कहीं ज्यादा बोझ अकेले उठाना पड़ता है।"

सूरज सिर पर चढ़ने के साथ, सिंह एक चट्टान पर बैठ जाते हैं और एक बीड़ी जलाते हुए अपने पशुओं पर नजर रखते हैं। तभी अचानक उत्साह का माहौल बन जाता है। झुंड की एक बकरी बच्चे को जन्म देती है और कुछ ही मिनटों में दूसरा मेमना भी पैदा हो जाता है। मां बकरी दोपहर का बाकी समय अपने बच्चों को चाटने और उन्हें दूध पिलाने में बिताती है। जल्द ही, नई मां और उसके बच्चे आपस में आवाज़ों के जरिये संवाद करने लगते हैं। यह अप्रत्याशित घटना एक चुनौती खड़ी कर देती है, क्योंकि नवजात मेमने कम-से-कम छह-सात घंटे तक अपने पैरों पर चल नहीं सकते। सूरज ढलने लगता है और घर लौटने का समय हो जाता है। सिंह खास आवाज़ें निकालकर झुंड को बुलाते हैं। दोनों हाथों में नवजात को उठाए रहते हैं और अब झुंड के बीच में नहीं, बल्कि किनारे-किनारे चलते हैं। वापसी के रास्ते में सिंह सूखे पत्तों के ढेर में पूरी तरह छिपा एक अजगर देख कहते हैं, "देखो, कैसे इंतजार कर रहा है! अगर मैंने उसे नहीं देखा होता और अपनी बकरियों से थोड़ा आगे या पीछे चला गया होता, तो वह किसी बकरी को दबोच लेता।" बताते हैं कि उन्हें हमले का पता बहुत बाद में चलता, क्योंकि अजगर जानवरों को गर्दन से इस तरह पकड़ते हैं कि कोई आवाज़ नहीं निकलती। यह उन अनेक खतरों में से एक है जिनका सामना चरवाहों को जंगल में पशु चराते समय करना पड़ता है।

*

रतन भी मानते हैं यहां पूरी तरह पशुपालन पर निर्भर होकर जीवनयापन करने वाले परिवार अब घटते जा रहे हैं। बढ़ता शहरीकरण और पारंपरिक आजीविकाओं से मिलने वाला कम आर्थिक लाभ इसकी प्रमुख वजहें हैं।

सेंटर फॉर इकोलॉजी डेवलपमेंट एंड रिसर्च (सीडर) में वरिष्ठ फेलो चेतन अग्रवाल कहते हैं, इस क्षेत्र में अतीत में आजीविका का मुख्य स्रोत पशुपालन ही था। पिछले एक दशक से अधिक समय से यहां शोध कर रहे चेतन बताते हैं, "गाय और बकरी पालने वाले चरवाहों ने मांगर में अरावली की पहाड़ी वनभूमि के विवेकपूर्ण प्रबंधन के लिए नियम बनाए थे, जैसे ईंधन लकड़ी और चारे का संग्रह केवल पतली तृतीयक शाखाओं तक सीमित रखना था, ताकि लंबे समय तक चारे की उपलब्धता बनी रहे। बाहरी लोगों द्वारा चराई और कटाई पर भी रोक थी।"

ये जंगल चराई की जमीन, औषधीय वनस्पतियों और प्राकृतिक आश्रय उपलब्ध कराते हैं, जिससे मौसम-दर-मौसम झुंडों का पालन होता है। बदले में चरवाहे और उनके पशु पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में मदद करते हैं। चराई झाड़ियों को अत्यधिक बढ़ने से रोकती है, नई वनस्पति को बढ़ावा देती है, बीजों के फैलाव में मदद करती है और वन का पुनर्जनन सुनिश्चित करती है। चेतन कहते हैं, "सामुदायिक जमीनों के निजीकरण और खनन तथा रियल एस्टेट के धंधे के आगमन के साथ यह व्यवस्था टूट गई।"

रतन के वापस रेवाड़ा लौटने तक सूरज अरावली की पहाड़ियों के पीछे लगभग डूब चुका होता है। थकी हुई बकरियां चुपचाप पीछे-पीछे चलती हैं, बस उनकी गर्दनों में बंधी घंटियों की हल्की-सी टनटनाहट सुनाई देती है।

घर पहुंचकर वे बकरियों की गिनती करते हैं, उनके चोट की जांच करते हैं और इस बात की भी तसल्ली करते हैं कि सबसे छोटे मेमनों को दूध मिला या नहीं। पशुओं की सुरक्षा को लेकर पूरी तसल्ली हो जाने के बाद वे रात के भोजन में सादा खाना खाते है, जिनमें फिर से चपातियां, सरसों की साग और बकरी का एक गिलास गरम दूध होता है।

कल वे फिर पहाड़ियों की ओर लौटेंगे - उन्हीं रास्तों पर, उसी आवाज़ के साथ, उन्हीं संकेतों को पढ़ते हुए। जंगल बदल गया है, काम कठिन हो गया है और इसे अपनाने वाले लोग कम होते जा रहे हैं। लेकिन फिलहाल चरवाहा और जंगल अब भी एक-दूसरे को पहचानते हैं। ■

अनुवाद: प्रभात मिलिंद; फोटो: अतुल कौशिक;
साभार: ruralindiaonline.org

Nehru centre

नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम

वेस्टर्न एक्सप्रेसवे पर
मुंबई के हृदयस्थल में,
बीकेसी से सटे,
एयरपोर्ट के पास

इन सबके लिए सर्वोत्तम:
- कॉरपोरेट/एचआर मीटिंग, सेमिनार या ट्रेनिंग सेशंस
- व्याख्यान
- बुक लॉन्च/ बुक रीडिंग
- पैनल डिस्कशन
- साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रम

ऑडिटोरियम उपलब्ध है
-पूरा दिन सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे
-आधा दिन सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे या शाम 4 बजे से शाम 8 बजे

बुकिंग के लिए कृपया संपर्क करें: +91 22-26470102, 8482925258
या हमें लिखें: contact@nehrucentre.com
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम, दूसरा फ्लोर, एजेएल हाउस, 608/1ए, प्लॉट नं. 2, एस. नं. 341, पीएफ ऑफिस के पास, बांद्रा, मुंबई- 400051